विमत : सिद्धान्त और साधना

डॉ० कृष्ण जी

नवनीत प्रकाशन
कानपुर ११

शैवमत : सिद्धान्त और साधना

डॉ० कृष्ण जी

एम०ए० (अंग्रेजी-हिन्दी), पी-एच०डी०, डी०लिट्०
वरिष्ठ प्रवक्ता—हिन्दी विभाग
दयानंद वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई (जालौन) उ० प्र०
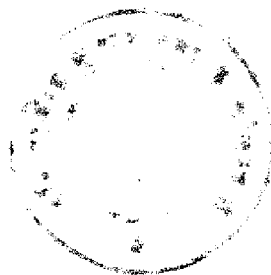
नवनीत प्रकाशन

कानपुर-११

मूल्य : चालीस रुपये मात्र

लेखक : डा० कृष्ण जी

संस्करण : ३ सितम्बर (जन्माष्टमी) १९८८

प्रकाशक : नवनीत प्रकाशन, कानपुर-११

मुद्रक : विमल प्रिंटर्स एण्ड स्टेशनर्स, उरई

समर्पण

(पूज्य पिता जी
...लीन श्री श्री १००८ सद्गुरु श्री भवानी शंक...
...ा जी महाराज)

...-कमलों में सादर समर्पित

—(डॉ०)

प्रस्तुति

शिव को परमेश्वर मानने वालों को शैव कहा जाता है तथा उनके धर्म को शैवमत। भगवान शिव का चिंतन, मनन और आराधना इस मत की विशेषता है। शैवमत की पीठिका अति प्राचीन है। वैदिक काल से ही शैवमत प्रतिष्ठा प्राप्त करता आ रहा है। ऋग्वेद अत्यन्त प्राचीनतम ग्रंथ है जिसमें प्रथम बार 'रुद्र' के लिए शिव शब्द प्रयुक्त हुआ है। पौराणिक काल में यही 'रुद्र' शिव में परिणत हो गए।

वैदिक काल में रुद्र की प्रतिष्ठा निर्गुण रूप में थी तथा वैदिक कालीन कवियों ने इनके इसी रूप की आराधना की, किन्तु उत्तर वैदिक साहित्य में रुद्र की परिणति शिव में हो जाने के कारण उनकी निर्गुण उपासना के साथ-साथ सगुण की उपासना आरम्भ हो गई तथा उत्तर वैदिक साहित्य में शिव के परिवार, पार्षदों आदि की कथायें भी प्रचलित होने लगीं।

भगवान शिव को केन्द्र मानकर उनके आध्यात्मिक सिद्धान्तों का आविर्भाव हुआ। दार्शनिक विचारधाराओं के विकसित होने के कारण शैवमत शाखा प्रशाखाओं में विभक्त हो गया जिनमें पाशुपत (गुजरात में), शैव सिद्धान्त (तमिलनाडु में), वीर शैवमत (कर्नाटक में), कश्मीरी शैवमत (कश्मीर में) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त कापालिक, कालमुख और रसेश्वर सम्प्रदाय भी हैं। कुछ साधना पद्धतियों का विकास उक्त सम्प्रदायों के समन्वय से हुआ जिनमें नाथ सम्प्रदाय उल्लेखनीय है।

शैवमत के विकास के साथ-साथ उनके सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले विशाल साहित्य का विकास हुआ। सम्पूर्ण प्राच्य साहित्य भगवान शंकर के यशो कीर्तन से देदीप्यमान है। वैदिक, उत्तर वैदिक साहित्य तन्त्र तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में शिव के सम्बन्ध में वर्णन इतस्ततः बिखरा पड़ा है शैवागमों का प्रचार उत्तरी एवं दक्षिणी भारत में

सैद्धान्तिक काव्यों में आगम ग्रंथों की दार्शनिक मान्यताओं का विवेचन है। सायण माधवाचार्य का 'सर्वदर्शन संग्रह' राजशेखर का 'षड्दर्शन समुच्चय', सद्योज्योति कृत 'नरेश्वर परीक्षा', वसुगुप्त कृत 'स्पंद कारिका', कल्लट का 'स्पंद सर्वस्व', सोमानन्द की 'शिव दृष्टि', उत्पलाचार्य कृत 'प्रत्यभिज्ञा कारिका' अभिनव गुप्त कृत 'ध्वन्यालोक लोचन', 'तन्त्रालोक', 'तन्त्रसार', 'मालिनी विजय', 'परमार्थ सार' आदि सैद्धान्तिक काव्यों में त्रिक् दर्शन का विशद विवेचन मिलता है। इनके अतिरिक्त सैद्धान्तिक काव्य शैव साहित्य के अन्तर्गत अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं— 'शिवसूत्र विमर्शिनी', 'विज्ञान भैरव', 'नेत्र तन्त्र', 'गोरक्ष शतक', 'योग चिंतामणि', 'योग मार्तण्ड', 'शिव सिद्धान्त पद्धति', 'तत्व प्रकाशिका', 'सिद्धान्त शिखामणि', 'शिवसूत्र वार्तिक', 'रुद्र भाष्य' आदि।

सैद्धान्तिक शिव साहित्य के अतिरिक्त शिव से सम्बन्धित महाकाव्य, खण्डकाव्य मुक्तकाव्य, स्तोत्र काव्य वाणी साहित्य, सलोका साहित्य एवं चरित काव्य भी मिलते हैं। शैवमत की लोकप्रियता, प्रचार एवं प्रसार में शैवाचार्यों द्वारा प्रणीत साहित्य का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

शैवमत में शिव और जीवात्मा, शिव और जगत के सम्बन्ध का विवेचन अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि विभिन्न प्रणालियों के द्वारा हुआ है।

पाशुपत तथा शैव सिद्धान्त द्वैतवादी हैं। इनके अनुसार शिव जीव को बन्धन से मुक्त करने के लिए जगत की सृष्टि करते हैं। शिव अंशी है, पशु उसका सनातन अंश है। जीव अनन्त है और शिव से भिन्न है। प्रत्येक जीव अपना अलग अस्तित्व रखता है। द्वैतावस्था समाप्त होने पर एक हो जाते हैं।

वीर शैवमत में जीवात्मा और परमात्मा में अद्वैत सम्बन्ध है तो अवश्य परन्तु जीवात्मा और परमात्मा से सर्वत्र अभिन्न नहीं। यह शिव से भिन्न नहीं है। जीव शिव का अंश और शक्ति को विशिष्ट माना गया है। इस मत में विश्व शिव की इच्छा शक्ति से उद्वेलित होने पर, समुद्र में लहर और बुदबुदों के समान अभिव्यक्त होता है। यह जगत् शिव का अविकृत परिणाम है।

कश्मीरी शैवमत में आत्मा और परमात्मा के अद्वैत सम्बन्ध का प्रतिपादन हुआ है। कश्मीरी शैव दर्शन के अनुसार यह विश्व और इसमें बसने वाले समस्त प्राण शरीर है जिसकी आत्मा शिव है तथा विश्व शिव से भिन्न

[illegible] है। अभिनव गुप्त परमेश्वर और जगत का सम्बन्ध दर्पण बिम्बवत् मानते हैं। उनके अनुसार परमेश्वर में प्रतिबिम्बित विश्व शिव से अभिन्न होने पर भी घटपटादि रूप से भिन्न आभासित होता है।

रसेश्वर दर्शन में शिव को परमानन्दधाम, परमज्योति स्वरूप तथा अनल्प बतलाया गया है। जीव को उनके इस स्वरूप का अनुभव होते ही समस्त कर्मबन्धनों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इस दर्शन की साधना में शरीर को ब्रह्म या शिव में साक्षात्कार के योग्य दिव्य बनाने के लिए पारद या रस को, जो शिव का वीर्य माना गया है, महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

शैवमत में दार्शनिक चिंतन के अतिरिक्त साधना पक्ष में योग का स्थान भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शैवयोग साधना रूढ़िगत हठयोग से प्रारम्भ होकर मन्त्र योग, लययोग द्वारा राजयोग अथवा शैवयोग की आध्यात्मिक भूमिका को प्राप्त करती है। शैवयोग साधना में चित्तवृत्ति निरोध पर विशेष बल दिया गया है।

शैवमत में चिंतन तथा योग के अतिरिक्त भक्ति को भी महत्व दिया गया है। भक्ति के विवेचन के लिए उसके तीनों पक्ष– भक्त, आराध्य तथा आराधना आवश्यक है। शैवमत में ये तीनों पक्ष उपलब्ध होते हैं।

भक्त अपने आराध्य की आराधना में लीन होकर परमानन्द की अनुभूति के लिए सचेष्ट रहता है। अपने आराध्य के प्रेम में, उन्हीं के अनुरूप वेशभूषा धारण करता है तथा आचार-विचार में उनके प्रति अपनी निष्ठा बनाता है। शैव भक्तों ने अपने आराध्य भगवान शिव को उनके गुण एवं कर्म के आधार पर अनेक नामों से अभिहित किया है। यथा मेधपति, औषधीय, ईशान, पिनाकी, त्रयम्बक, महादेव, शर्व, भव, सहस्राक्ष, महेश्वर, गिरिशन्त, नीलग्रीव, मृत्युंजय, महेश, शिव, शम्भु, उमापति आदि।

शैव भक्त अपने आराध्य की पूजा सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों में करते हैं। सगुण रूप में शिव पार्वती पति, गणेश एवं स्कंद के पिता हैं। वे नटराज एवं अर्द्धनारीश्वर भी हैं। साकार रूप में दो स्वरूप उनके प्रचलित हैं– सौम्य एवं रौद्र।

शैवों के आराध्य भगवान शिव पापतापहारी एवं कर्मों के फलदाता तथा मुक्ति प्रदायक हैं।

शिव पुराण में शिव पूजा के अनेक उपकरणों का उल्लेख हुआ है। वहां 'आक और धतूरे' तथा बिल्व-पत्र से शिव के प्रसन्न होने की बात कही गई है।

शैवों में अंतरंग भक्ति का भी महत्व रहा है। उसमें भक्त भगवान के चरणों में आत्म निवेदन कर क्रमशः रागानुगा और पराभक्ति को प्राप्त करता है। साधनावस्था में भक्त का विरक्ति भाव दृढ़ होता है। निरन्तर अभ्यास करते रहने से वह आत्म समर्पण करने योग बनता है। श्रवण, कीर्तन, मनन चरण-सेवन और आत्म-निवेदन के अतिरिक्त शिव भक्तो में उपासना की विशिष्ट पद्धति नमक-चमक पूजा और पार्थिव पूजा की भी मान्यता रही है।

शैव तांत्रिकों ने आत्मा के सभी कर्म शिव की अर्चना माने गये हैं। ये बाह्य उपासना की अपेक्षा मानसिक उपासना को श्रेष्ठ मानते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति की आत्मा शिवमय है। भारतीय चिंतन, दर्शन, कला, साहित्य और लोक परम्परा में शिव इस तरह घुल मिल गए हैं कि उन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता है। वैदिक युग से लेकर आज तक देश का समग्र भारतीय जीवन शिव ही शिव है। शैवमत अत्यन्त व्यापी मत है। कैलाश से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक भारत में शिवोपासना किसी न किसी रूप में प्रचलित रही है।

शैवमत का सर्वाधिक प्रचार द्रविण या तमिल प्रदेश में हुआ और सर्वाधिक शैव साहित्य दक्षिण भारत में उपलब्ध होता है। वस्तुतः शैवमत नितांत विशुद्ध, व्यापक प्रभावशाली तथा प्राचीनतम मत है।

जन्माष्टमी
सम्वत् २०४५

—(डॉ०) कृष्ण जी

क्रम

1 | शैवमत-उद्भव व विकास

शैवमत

शैवमत अत्यन्त प्राचीन है। इसके अन्तर्गत भगवान शिव का चिन्तन मनन एवं आराधना का विशेष महत्त्व है। महेश्वर या शिव ही शैवमत के आदि उपदेष्टा माने जाते हैं। पाशुपत मत ही शैवमत के नाम से अभिहित किया जाता है :—

"महेश्वरास्त मन्यते कार्य्यकारण योगविधिदु: खान्ता: पंचपदार्था:
पशुपति नेश्वरेण पशुपाश विमोक्षणयोपदिष्टा:" ।[1]

शैवमत के प्रतिपादक शिव हैं। शिव-रुद्र की उपासना अति प्राचीन काल से प्रचलित है। भारतीय धर्मग्रंथों में शिव को मंगलकर देव के रूप में स्वीकार किया गया है। शिव नाम का क्रमबद्ध इतिहास तो अप्राप्य है, फिर भी आज जो 'रुद्र' नाम शिव का पर्यायवाचक माना जाता है, इसी को हम शिव नाम का उद्‌भव बीज के रूप में मान सकते हैं। शिव-रुद्र नाम के बीज हमें वैदिक काल से ही उपलब्ध होते हैं।

ऋग्वेद में 'रुद्र' के अनेक पर्यायवाची प्राप्त होते हैं, जिनमें अर्थ का एक विकास क्रम है। 'रुद्र' बलवान हैं, इसलिए 'वृषभ',[2] आकाश में निवास करने के कारण 'दिवोवराह'[3] भयंकर अग्नि रूप होने के कारण 'कल्मलीकिन'[4] वर्षा करने वाले के कारण 'मेघपति'[5] औषधियों के स्वामी होने के कारण औषधीश,[6] वज्र धारण करने के कारण वे 'वज्रधारी'[7] कहे गये हैं।

१— सूत्र ३७, अध्याय २, शारीरिक भाष्य, शंकर स्वामी।
२— एव बभ्रो वृषभ चेकितना यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवन श्रुन्नो रुद्रेहि बोधि बृहद्वदेन विदथे सुवीरा: ।। ऋग्वेद २।३३।१५
३— दिवो वराहम् रूपं कपर्दिनं, त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे
हस्ते बिभ्रद्‌भेषजा वार्याणि, शर्म वर्म छर्दिरस्मभ्यं यंसत्। ऋग्वेद १।११४।५
४— प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे, महो महीं सुष्टुतिमीरयामि।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ।।ऋग्वेद २।३३।८
५— ऋग्वेद १।४३।४।
६— वही, ५।४२।११।
७— वही, २।३३।१

उन्हें 'भीम उपहन्तु'[1], 'जलाष' और 'जलाषभेषजे'[2], 'स्वयसस'[3], 'प्रचेतस'[4], 'कवि प्रसूत जगत का ईशान'[5], भी नामित किया गया है। केवल ऋग्वेद में एक स्थान पर रुद्र के लिए 'शिव'[6] प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में शिव शब्द का प्रयोग कम ही हुआ है और वह भी विशेषण के रूप में।

यजुर्वेद में 'रुद्र' के लिए अनेक विशेषण प्रयुक्त हुए हैं जो लौकिक संस्कृत में 'शिव' के भी विशेषण हैं। यजुर्वेद के रुद्र 'पिनाकी'[7], 'कपर्दी'[8], 'नीलग्रीव'[9], 'त्र्यम्बक'[10], आदि अनेक नामों से अभिहित किए गए हैं। यजुर्वेद में 'रुद्र' के नामों का पर्याप्त विकास हुआ है। 'रुद्र' के अनेक नामों में से अधिकांश का सम्बन्ध लौकिक संस्कृत के शिव से ही रहा है। ऋग्वेद में प्रयुक्त नामों में बहुत से तो वहीं रह गए, कुछ में अर्थ परिवर्तन हुआ और कुछ मूल अर्थ को लेकर प्रचलित रहे यथा पिनाकी, त्र्यम्बक् आदि।

१— स्तुहि श्रुतं गर्तसद युवानं मृगन भीममुपहंतु मुग्रम्। ऋग्वेद २।३३।११

२— वही, १।४३।४, २।३३।७।

३— तद्रुद्राय स्वयशसे ऋग्वेद १।४३।१।

४— कद्रुद्राय प्रचेतसे मीलहुष्टमाय तव्यसे। ऋग्वेद १।४३।१।

५— ऋग्वेद २।३३।९।

६— स्तोम वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन। येभिः शिवः स्ववारवयावभिदिवः सिषक्तिस्वयथा निकामभिः ऋग्वेद १०।९२।९।

७— मीढुष्टम शिवतम् शिवोनः सुमनाभवा परमेवृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिवंसानऽआचर पिनाकं बिभ्रदानहि। शु० य० २६।५१।

८— विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो वाणवान उत अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषगंधिः॥ शु० य० १६।१०।

९— नमोस्तु नीलग्रीवाय सहस्त्राक्षाय मीढुषे। वा०सं०य०वे० १६।१।६६।८।

१ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम कृ०य० १ ८ ६ ऋग्वेद

[illegible]

अथर्ववेद में रुद्र विषयक मान्यता का और अधिक विकास पाया जाता है। यहाँ 'रुद्र' के लिये कतिपय अन्य नाम भी दिये गये है। जहाँ महादेव,[1] पशुपति[2] ईशान आदि नामों की वृद्धि हुई वहीं सहस्राक्ष,[3] धुम्रकेश[4] आदि नाम भी प्रयुक्त हुये। रुद्र के अनेक नाम जो अन्य वेदों में उपलब्ध हुए है की भाँति अर्थ परिवर्तन का मार्ग ग्रहण कर गए। सहस्राक्ष जैसे नाम रुद्र और शिव शब्द की श्रृंखला की कड़ी न रह कर भिन्नार्थक बन गये।

अथर्ववेद में उपलब्ध रुद्र के कई नाम आगे चलकर प्रचलित हुए यथा— रुद्र, शर्व, उग्र, भव, पशुपति, महादेव और ईशान। रुद्र अग्नि में है, जल में है, औषधियों एवं वनस्पतियों में है तथा समस्त भूतों की रचना उन्होंने ही की है।[5]

रुद्र के विभिन्न रूपों की चर्चा करते हुये यह कहा गया है कि भव, शर्व एवं रुद्र के बाण सदाशिव हों।[6] सवितृ को अर्यमन् वरुण रुद्र एवं महादेव कहा गया है।

१- सो वर्धत स महानभवत् स महादेवा भवत्।

-अथ० वे० १५।१।४

२- भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्चयः।

इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः॥

-अथ० वे० १०।६।९।

३- अस्यानीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना।

रुद्रेणार्धकाघातिना तेन मा समरामहि॥

-अथ० वे०११।२।७।

४- अथ० वे० ११।२।

५- वही० ७।८७।१।

६ वही ११।६।९।

कहने का आशय यह है कि अथर्वेद तक रुद्र के साथ शिव और महादेव नाम संलग्न हो गए या शिव और महादेव के रूप में रुद्र आने लगे । एक ओर रुद्र विष भेजते है और उनके बाण देवताओं के लिए अचूक एवं अपरिहार्य हैं, तथा दूसरी ओर उनके कल्याणकारी रूप भव तेजस्वी राजा बतलाया गया है । रुद्र समस्त भूतों के पति हैं । वही आकाश एवं अंतरिक्ष में राज्य करते हैं । वह अग्नि, जल, वनस्पतियों, औषधियों एवं समस्त भूतों में है । वह समस्त भागों में व्रात्यों के रक्षक हैं तथा प्रधान शासक है। इस प्रकार उग्र एवं विनाशकारी देव मनुष्यों द्वारा विभिन्न उपायों से प्रसन्न हो कर कल्याणकारी बन जाते हैं तथा वेदों के समय के अन्तिम चरण तक ईश्वर की महिमा प्राप्त कर लेते हैं ।

'शतरुद्रिय' में शिव का विकसित रूप दिखाई देता है । वे दोनों रूपों उग्र एवं मंगलमय (शिवा: तनु:) में प्रस्तुत होते दिखाई पड़ते है। उनके इन दोनों रूपों को पृथक कर दिया जाता है तथा उनमें भेद कर दिया जाता है । उन्हें 'गिरिश' एवं 'गिरित्र' अर्थात पर्वत पर शयन करने वाला कहा गया है. सम्भवत: वह जिस वज्र को डालते है वह मेघ से प्रकट होता है । उन्हें पशूनाम पति: कहा गया है । अग्नि से अभिन्न होने के कारण उन्हें कपर्दिन भी बताया गया है । जब उनकी उग्रता पूर्णतया शाँत हो जाती है, तब वह शम्भु, शंकर एवं शिव बन जाते हैं । इस प्रकार भयंकर रूप में रुद्र कहे जाने वाले शाँत रूप में शंकर कहे जाने लगते हैं । जो परम शक्ति संहारक रूप में रंजित थी, वह 'शतरुद्रिय' तक शिवत्व समन्वित हो जाती है । शतरुद्रिय में रुद्र को व्यापक बनाकर अनेक रुद्रों का वर्णन किया गया है ।[1] एक के स्थान पर अनेक रुद्रों को प्रतिष्ठित किया गया है ।

१— अनेक रुद्रों की कल्पना के विषय में दो धारणायें हैं (१) रुद्र का अभिप्राय सम्भवत: प्रेतात्माओं से था, तथा (२) विविध शिल्पियां एवं निषादों के साथ रुद्र का गण एवं गणपति कर्मकार, कुम्भकार, रमकार, नसक एवं निषादो का पति कहा गया । प्रत्येक वर्ग ने पृथक रुद्र की ओर एक रुद्र के अनेक रुद्र हो गए ।

ब्राह्मण ग्रन्थों ने रुद्र नाम की व्याख्या में एक चरण आगे बढ़ाया और रुदन करने के कारण उनको 'रौद्र'[1] कहा। यहां 'रौद्र' का देवत्व अधिक विकसित हुआ एवं रुद्र तथा अग्नि में अभेद हो गया।[2] याज्ञवल्क्य के तैंतीस देवों में रुद्रों ने ग्यारह स्थान घेर कर इन्द्र, आदित्य, वसु और प्रजापति के साथ देवत्व पथ पर आसीन हुए।[3]

अथर्ववेद में रुद्र के सात नाम प्रचलित थे पर ब्राह्मण ग्रन्थों में एक अन्य नाम-आठवाँ अशनि या वज्र जोड़ दिया। शतपथ ब्राह्मण[4] एवं कौषीतकि ब्राह्मण[5] के अनुसार रुद्र उषा के पुत्र थे तथा जन्म के अन्तर बड़े होने पर प्रजापति उनके आठ नाम रक्खे। सात नाम अथर्ववेद की तरह थे आठवाँ नाम अशनि वज्र है।

१— तमब्रवीद् रुद्रो सीति तथदस्य तन्नाम्ना करोत्।
अग्निस्तद्रूपमभवत् अग्निर्वे रुद्रो।
यदरोदीतस्माद्रुद्रः। सोऽब्रवीत् ज्यायान्वाऽअतो
ऽस्मिघेह्येव मे नामेति। —शत० ब्रा० ६।१।३।१०।

२— अग्निर्वे सः देव तस्यैतानि नामानि सर्वइति
यथाप्राच्या आचक्षते भवति। यथा वाहीकाः
पशूनांपती रुद्रोऽग्निारति। —शत० ब्रा० १।७।३।८।

३— स हो वाच महिमानऽस्वेषामेते त्रयस्त्रिंशत्स्त्वेव
देवाऽइति कतमे ते त्रयस्त्रिंशत् इत्यष्टो व्यसवः
एकादश रुद्राः द्वादशादित्यास्तऽएक त्रिंशत्
इन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति।
—शत० ब्रा० १४।३।७।३।

४— ६।१।३।७— शतपथ ब्राह्मण,

५— ६।१।७- कौषीतकि ब्राह्मण।

इन आठ नामों में चार नाम विनाशकारी शक्ति के बोधक है- रुद्र, शर्व, उग्र एवं अशनि, तथा चार नाम रुद्र के कल्याणकारी शक्ति के परिचायक हैं- भव, पशुपति, महादेव तथा ईशान ।

अथर्ववेद एवं ब्राह्मण ग्रंथो में नाम में समानता होते हुए भी उनके पीछे एक मौलिक अन्तर दिखलाई पड़ता है । प्रकृति के भयंकर एवं विनाशकारी तथा कल्याणकारी और दयालु रूपों से अथर्ववेद में उल्लिखित सात विभिन्न देवों की मान्यता का उदय हुआ, परन्तु दोनों ब्राह्मणों 'शतपथ' एवं कौशीतकि में समस्त नाम एक ही देव के नाम है ।

गृह्य सूत्र काल में भी रुद्र उग्र देवता बने रहते है उन्हें भाँति-भाँति प्रकार से प्रसन्न किया जाता है। अधिकाँश गृह्य सूत्रों में शूलगव नामक एक यज्ञ का परिचय मिलता है । यज्ञ में रुद्र को प्रसन्न करने के लिए ग्राम की सीमा से बाहर वृषभ की बलि देने का विधान है ।[1] यह विधान अमांगलिक स्वरूप की ओर संकेत करता है । रुद्र के बारह अथवा छह विशेष नामों अथवा किसी एक नाम को उच्चरित करते हुये वपा को अग्नि में डालना चाहिए । इनमें सात नाम वे ही हैं जिनका उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है । शेष पांच नाम ये हैं हर, मृड, शिव, भीम एवं शंकर । यह शूलगव यज्ञ पशुओं के रोगों से बचाने के लिए गोशाला में किया जाना चाहिए ।[2] आहुति देने के नियमों के अन्तर्गत महत्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ देवताओं के साथ उनकी पत्नियों-इन्द्राणी, रुद्राणी शर्वाणी, भवानी आदि के लिए भी आहुति का विधान है । प्रत्येक देवी को भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहा' आदि मंत्रों का उच्चारण करते हुए आहुतियाँ देने की बात कही गई है, उनके अलग-अलग नाम लेने का विधान नहीं किया गया है ।

१- ४।१९- आ०गृ०

२- ३।८ पा०गृ०

पारस्कर गृह्यसूत्र में मनुष्यों एवं पशुओं के रक्षार्थ रुद्र की अर्चना एवं वंदना का विधान बतलाया गया है। उसमें स्पष्ट लिखा है– मार्ग पार करते समय, चौराहे पर पहुंचते समय, पर्वत पर चढ़ते समय, श्मशान, गोशाला तथा ऐसे ही अन्य स्थानों में होकर जाते समय रक्षार्थ रुद्र की वंदना का निर्देश है।[1] इसी प्रकार हि० गृ० सूत्र में निर्देश है कि कोई यात्री जब किसी चौराहे या गोबर के ढेर पर पहुचे या सर्प रास्ता काट जाए या जब प्रभंजन से अभिभूत हो जाए या जब नदी में घुस रहा हो या जब चित्र विचित्र दृश्य यज्ञ स्थल या पुराने बड़े वृक्ष को देखे तब उसे ग्रन्थ में दिए गए विशेष मंत्र का जप करके रुद्र की अर्चना करना चाहिए।[2]

इस प्रकार गृह्यसूत्र काल में भी रुद्र, उग्र देवता बने हुए थे और उन्हें प्रसन्न किया जाता था तथा रुद्र के साथ शिव का नाम जोड़ दिया जाता है।

उपनिषदों ने भी रुद्र नाम के विकास में अपना पर्याप्त योगदान किया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् ने रुद्र को गिरिशन्त, गिरित्र[3] ही नहीं कहा वरन् 'शिव' शब्द से अभिहित किया। एक प्रकरण में रुद्र को अग्नि, सूर्य, वायु, ब्रह्म, प्रजापति व महेश्वर[4] तक कह डाला।

आरम्भिक उपनिषदों में ईश्वर के स्वरूप, जीव एवं जगत के साथ उसके सम्बन्ध की जो समुन्नत व्याख्या की गई, वह श्वेताश्वतर उपनिषद् में रुद्र-शिव पर आरोपित कर दी गई है। अथर्ववेद में रुद्र–शिव सर्वोच्च

१– ३।१५ पा० गृ० सूत्र

२– १५।१६–हि० गृ० सूत्र

३– यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्।
—श्वे० उ० ३।३।,३।४,३।५,३।६,३।७।

४– यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः
—श्वे० उ० २।१७।

रुद्र की महिमा का प्रतिपादन करने लगते हैं यही शिव श्वेताश्वतर उपनिषद में अपनी पूर्णता को प्राप्त हो जाते हैं। परमात्मा या ईश्वर के लिए जो देव शब्द प्रयुक्त होता है वह रुद्र शिव-ईशान अथवा महेश्वर से अभिन्न बताया जाता है, और उसकी शक्तियों को ईशानी कहा गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के तृतीय अध्याय में परमेश्वर के लिये ईशान, ईश एवं शिव नामों का प्रयोग हुआ और भगवत् उपाधि का अनेकशः प्रयोग है। श्व०उ० के पाँचवे अध्याय में तो शिव को जगत कीउत्पत्ति एवं संहार करने वाले कह कर भाव (विश्वास, अनुराग) द्वारा ग्राह्य कहा गया है। अतः श्वेताश्वतर उपनिषद् में हमें रुद्र–शिव सगुण रुप में दिखाई देते हैं तथा वह भक्ति मार्ग का प्रवर्तन करते हुए देखे जा सकते हैं। उपनिषद् काल में शिव सर्वोच्च देव रुद्र–शिव ठहरते हैं।

छाँदोग्य उपनिषद् में रुद्र को वसुवो से अधिक महत्वशाली निरुपित किया गया है। उपनिषद् में कहा गया है। 'जितने समय में आदित्य पूर्व से उदित होता है और पश्चिम में अस्त होता है उससे दुगने समय में वह दक्षिण से उदित होते हुए उत्तर में अस्त होता है। इतने समय पर्यन्त वह रुद्रों के ही आधिपत्य एवं स्वराज्य' को प्राप्त होता है। अर्थात वसुवों की उपेक्षा रुद्रों का भोगकाल दूना है। इसी उपनिषद में एक स्थान पर.........उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन......... कह कर रुद्र का सम्बन्ध इंद्र से व्यक्त किया गया है।[1]

माण्डूक्योपनिषद् में ओंकार के लिए 'शिव' शब्द का प्रयोग किया गया है। वहाँ द्वैतस्योपशमः शिवः कह कर शिव शब्द के अर्थ को व्यक्त किया गया है। शांकरभाष्य में इसका अर्थ 'सम्पूर्ण द्वैत का उपशम स्थान' होने से ओंकार को 'शिव' (मंगलमय) कहा गया है। इससे स्पष्ट होता कि ऋग्वेद के शिव का अर्थ उपनिषदों में भी सुरक्षित था।

१– छाँदोग्य उ०– ३।७।९३

उपनिषद् काल में रुद्र शिव की पत्नी का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। केन-उपनिषद् में हैमवती या हिमवान की पुत्री के रूप में उमा का नाम मिलता है, जो बाद में रुद्र-शिव की पत्नी कहलाने लगी थी, परन्तु 'केन' में उनका उल्लेख रुद्र-शिव की पत्नी के रूप में नहीं किया जाता है, पर यह कहा जा सकता है कि उक्त उपनिषद् की रचना के समय उमा या हैमवती को रुद्र-शिव की पत्नी के रूप में स्वीकार करने की विचारधारा पल्लवित होने लगी थी।[1]

रुद्र से सम्बन्धित एक अन्य उपनिषद् जिसे अथर्व शिरस् कहते हैं। इसमें पाशुपत विशेषण मन्त्र जाप की चर्चा है। यह उपनिषद् पाशुपत सम्प्रदाय का ग्रंथ माना जाता है। इस ग्रंथ के अन्तर्गत रुद्र देवताओं को अपना परिचय इस प्रकार देते हैं- वह अकेला ही था, अकेला ही है और अकेला ही रहेगा तथा इसके अतिरिक्त एक भी नहीं। वह समस्त दिशाओं में है, वह गायत्री है पुरुष, स्त्री आदि सब कुछ है...आदि।' देवता रुद्र की स्तुति इस प्रकार करते हैं- जो रुद्र है, जो भगवान है तथा जो ब्रह्मदेव भी है, उसको नमस्कार है। आगे वाक्यों में ब्रह्मदेव के स्थान पर विष्णु, महेश्वर, उमा, स्कंद, विनायक आदि नाम मिलते हैं तदुपरान्त ओंकार का उल्लेख है जिसके साथ दैवी गुणों के विशेषण लगे हुए हैं और अन्त में उसे एक रुद्र कहा गया है जो ईशान, भगवान, महेश्वर एवं महादेव है। इस ग्रंथ में नामों की व्युत्पत्ति देते हुए लिखा गया है कि वह रुद्र इसलिए कहलाता है कि वह अकेले ही प्रत्येक वस्तु की रचना करता है और उसे नष्ट करता है।

१-अनुमान इस कथा पर आधारित है- ब्रह्म ने देवों के कल्याण के लिए उनके शत्रुओं पर विजय प्राप्त की, परन्तु इस विजय का श्रेय देवता स्वयं को देने लगे। वे अपनी उपलब्धियों पर गर्व कर रहे थे कि थोड़ी ही दूर पर एक यक्ष प्रकट हुआ। सर्व प्रथम अग्निदेव यह देखने गए कि यह कौन था। यक्ष ने उसकी सीमा अग्नि से पूछी तत्पश्चात उनके सामने एक तिनका रख दिया और अग्निदेव से कहा कि इस तिनके को जला दे, परन्तु वे ऐसा नहीं कर सके। वायुदेव पहुंचे, पर वे तिनके को उड़ाने में असमर्थ रहे। तत्पश्चात इन्द्रदेव पहुंचे। उनके पहुंचने पर यक्ष अन्तर्ध्यान हो गया। इन्द्र निराश हुए। इन्द्र के समक्ष उमा हैमवती नाम की एक सुन्दरी प्रकट हुई। इन्द्र ने उस सुन्दरी से यक्ष के विषय में जानकारी की। उस सुन्दरी ने यक्ष के स्वरूप का उद्घाटन किया। इससे अनुमान लगाया जाता है कि यक्ष अन्य कोई नहीं है बल्कि ब्रह्म रुद्र-शिव थे और वह सुन्दरी उमा हैमवती उनकी पुत्री थी। अतः यह अनुमान लगाया गया कि केन उपनिषद् की रचना के कुछ समय पूर्व ही उमा को रुद्र-शिव की पत्नी के रूप में माना जाने लगा होगा।

उत्तर वैदिक काल में प्राप्त ग्रंथ महाभारत रामायण और पुराण ग्रंथों में शिव शब्द कहीं कहीं विशेषण के रूप में प्राप्त होता है किन्तु उसका प्रयोग अनेकशः देव विशेष के लिए ही हुआ है। भले ही वैदिक साहित्य में रुद्र के अनेक विशेषण शिव के पर्यायी बन गए थे लेकिन 'शिव' किसी कथा के पात्र होकर कहीं भी हमारे सामने नहीं आते। शिव सम्बन्धी कथाओं को जन्म देने में और विकसित करने में रामायण व महाभारत के साथ पुराणों का पर्याप्त योगदान रहा है। शिव-विष्णु[1] और शिव-ब्रह्मा[2] का सम्बन्ध विकसित होता हुआ, शिव परिवार भी विस्तार को प्राप्त होता है।

महाभारत में शिव की सर्वशक्तिमता, अर्चना एवं दानशीलता के अनेक प्रसंग आते हैं। महाभारत में शिव पूर्ण परमेश्वर बन जाते हैं। महाभारत के भीष्मपर्व, वनपर्व, द्रोणपर्व एवं सौप्तिक पर्व की कथायें इसका प्रमाण हैं।[3]

तंत्रों में शिव[4] नाम अपना स्पष्ट अर्थ लेकर आया है, बिल्कुल उसी प्रकार का पुराणों में मिलता है, किन्तु कथा प्रसंग का वहाँ अभाव है। इनमें साधना विषयक प्रस्थापना तथा उपासना पद्धति का निरूपण देखने को मिलता है। जो भी हों तंत्र साधना एवं उपासना दोनों में शिव नाम अवतीर्ण हुआ है।

१– येष मूर्तिर्भगवतः शंकर आस स्वयं हरिः। -बराह पुराण १।७

२– शंकरो भगवान शौरिर्भू तिगौरी द्विजोत्तम
नमो नमो विशेषस्त्वं त्वं ब्रह्मा त्वं पिनाकधृक्॥
–वा० पु० २।८।२१।

३– महाभारत अध्याय–७।३८–४० भीष्मपर्व,

४– अस्ति देवी परब्रह्म स्वरूपी निष्कलः शिवः।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलाशयः॥
अयं ज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः।
निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तदंशा जीवसंज्ञका॥
–कुलार्णव तंत्र १।११-१२।

कि काल में पौराणिक काल तक शिव के नाम के विकास के उपरान्त उनके रूप एवं गुणों के विकास का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है।

वैदिक काल से पौराणिक काल तक शिव के स्वरूप में पर्याप्त विकास देखने को मिलता है वे निराकार से साकार हो गए। दो रूपों में प्रचलित एक भयंकर और दूसरा कल्याणकारी। भयंकर रूप में वे वज्रधारी[1] हैं तथा सौम्य अथवा कल्याणकारी रूप में वे पीयूषमद[2] बतलाए गए हैं।

यजुर्वेद में वे बलवान, सुसज्जित योद्धा हैं उनके हाथ में पिनाक[3] नामक धनुष-बाण है। वे श्रृंग वज्र धारण करते हैं तथा सिर की रक्षा के लिए 'शिरस्त्राण' व शरीर की रक्षा के लिए 'वर्म' व कवच भी धारण करते हैं।[4] ये जटाधारी हैं। कल्याणकारी[5] रूप में केवल पुण्य-फल के दाता हैं। इसी वेद के अनुसार रुद्र की ग्रीवा नीली है, वे नीलकंठ हैं, सहस्त्र नेत्र हैं।[6] वल्कलधारण करते हैं, वृषभ पर बैठने वाले लोहितवर्ण विश्वकर्मा भी हैं।

१– ऋग्वेद- २।३३।१

२– स्व स्व ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो, यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः॥
—ऋग्वेद-२।३३।७

३– शु० य० वे० - १६।५१।

४– महीधर भाष्य के अनुसार 'कवच' और 'वर्म' अन्तर है। लोहे का बना शरीर रक्षक वर्म कहलाता था। कवच के ऊपर वर्म पहिना जाता था यथा—

पटस्यूत कार्पासिगर्भं देहरक्षकं कवचम्।
लोहमय शरीर रक्षकम् वर्म॥
—शु० य० वे०-१५।३५ पर महीधरभाष्य।

५– वा० सं० शुक्ल यजुर्वेद- १६।१।६६।३,१०

६– शु० य० वे०, वा० सं० १६।१।६६।८

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्त्राक्षाय मीढुषे।

अथर्ववेद में रुद्र का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है रुद्र के मुख, चक्षु, अंग उदर, जिह्वा तथा दाँतों का वर्णन इसमें मिलता है। इनके सहस्त्र नेत्र एवं नीली गर्दन[1] का उल्लेख भी इस उपनिषद् में हुआ है।

उपनिषदों में रुद्र के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है कि 'वे समस्त मुखों वाले, समस्त सिरों वाले, समस्त ग्रीवा वाले, समस्त जीवों के अन्तःकरण स्थिति, सर्वव्यापी, सर्वजगत एवं मंगलकारी है।'[2] वे अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, प्रजापति आदि नामों से उनका स्वरूप इंगित मिलता है।[3]

उत्तरवैदिक काल में इनके रूप का विकास चरम सीमा पर पहुंच गया। यहाँ वे अपने परिवार एवं पार्षदों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। उत्तर वैदिक काल में रुद्र का शिव स्वरूप प्रधान है यहां पर भक्तों ने शिव के सगुण रूप को ही अधिक महत्व दिया है। अतः रुद्र एवं दोनों ही भक्तों की अमूल्य निधि के रूप में सुरक्षित है। सगुण शिव का एक परिवार है। वे उसी में रहते हैं। वे शिवा से विलग न होने के कारण अर्द्धनारीश्वर हैं।[4] इनके एक पुत्र देवों

१– मुखाय ते पशुपते यानि चक्षुषि ते भव।
त्वचे रूपाय चक्षुश प्रतीचीनाय ते नमः॥
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्त्राक्षेण वाजिना।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि॥

—अ० वे० ११।२।५,७।

२– सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः॥

—श्वे० उप० ३।११।

३– मैत्रायणी उपनिषद् ५।८।

४– अर्धनारीशरीराय अव्यक्ताय नमोनमः।

—लिंग पु० १।१८।३०।

के सेनापति है तो दूसरे देवों में अग्रपूज्य हैं। यदि शिव पंचानन[1] हैं तो उनके पुत्र षडानन[2] हो गये। पत्नी शिवा न जाने कितने अवतार रूप धारण करने वाली हैं। सबके वाहनों की अपनी-अपनी विशेषतायें हैं। शिव जी का वाहन वृषभ, शिवा का वाहन सिंह, षडानन् का मयूर एवं गणेश जी का मूषक है। शिव त्रिनेत्र हैं। तीसरे नेत्र से वे मदन[3] को दग्ध करते हैं। गंगा उनके सघन एवं विस्तृत केशों में समा जाती हैं। अवढ़रदानी, प्रलयंकर एवं सौम्य रूप से वे युक्त हैं।

शिव के नाम और रूप से उनके गुणों को पृथक नहीं किया जा सकता है।

वेदों ने रुद्र के बलवान, दृढ़, अजेय, अक्षेय शक्ति वाले रूप का वर्णन करते हुए उनके पोषक एवं हन्ता रूप का एक साथ समन्वय कर दिया है। वेदों में रुद्र के सौम्य गुण भी स्पष्ट है– वे कल्याणकारी, शाँत एवं मुक्तिदाता के रूप में चित्रित तो हैं ही, पर उनका प्रलयंकर गुण भी उसमें विद्यमान है। मंत्रोपदेष्टा कहकर यजुर्वेद एवं अथर्ववेद ने 'ब्रह्म' को महत्व देकर शिव के गुणों को ध्यान में रखते हुए भी उन्हें ब्रह्म का प्रतीक[4] बना दिया। उपनिषदों में शिव और ब्रह्म में अभेदत्व[5] स्थापित करने का प्रयत्न किया गया परन्तु

१– न्यसेत् सिंहासने देव शुक्लं पंचमुखं विभुम्।
दशाबाहुं न खण्डेन्दुं दधानं दक्षिणैः करैः॥
–अग्नि० पु० ७५।५०।

२– अग्नि पुराण– १।१०८। २८–३०

३– वा० रामायण। बालकाण्ड स०-२३ १०

४–(क) नमो रुद्राय हरये ब्रह्मणे परमात्मने।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥
—लिंग पु०– १।१।१

(ख) देवेषु च महान् देवो महादेवस्ततः स्मृतः।
सर्वेश्वरत्वाच्च लोकानामवश्यत्वात् तथेश्वरः॥ –वायु पु० ५।३८

(ग) त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
– सौर पुराण २९।३१

५– (क) एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य
इमाँल्लोकानीशत ईशानभिः। –श्वे० उ० ३।२

(ख) ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तम्। –श्वे०उ० ३।७

उत्तर वैदिक काल में शिव अपने सगुण रूप में ही व्यक्त हुए हैं। इसका विशेष-कारण उपासना पद्धति का विकास ही कहा जायेगा।

सूत्र ग्रंथों में रुद्र को व्याधिहर्ता, पालक और रक्षक के गुणों से युक्त बतलाया गया है।[1] उपनिषदों की अभेद दृष्टि में दृष्टि डालकर तंत्रों ने शिव को पर ब्रह्म निष्कल, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता सर्वेश, निर्मलाशय ज्योति स्वरूप निर्गुण, निर्विकार, सच्चिदानन्द आदि गुणों से अभिहित किया है।[2]

आराध्य या उपास्य के रूप में शिव के गुणों का विस्तार होता चला गया। वे अपने भक्तों के लिये विषपायी एवं गंगाधर बन गए। उनके गुणो का अनेक प्रकार से वर्णन होता रहा और भक्तों को अपनी तरल भावना की तरंगो में 'शिव' बहुगुणी हो गए। जैसे रुद्र नाम शिव में बिलीन हो गया उसी प्रकार रुद्र के गुण भी शिव में विलीन हो गए। वैदिक काल से पौराणिक काल तक जिस प्रकार उपासना पद्धति में भी एक विकास क्रम दिखलाई पड़ता है। वैदिक काल की उपासना पद्धति भावमयी थी जो केवल प्रार्थनाओं तक सीमित थी, पर उत्तर वैदिक काल की विधि में शिव के विभिन्न रूपों को अनेक विधि से पूजन का विधान है। पुराणों में शिव के साथ उनके परिवार जनो आदि की पूजा का भी विधान देखने को मिलता है। देखते हैं कि यहीं से शिव की उपासना विधियों में विविधता आ गई। इस प्रकार वेदों की भावमयी उपासना धीरे-धीरे विकसित हो कर मूर्ति पूजा में परिणित हो गई। वही रूप आज उपलब्ध है। वेद एवं वेदोत्तर साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रुद्र-शिव आरम्भ से ही एक लोकप्रिय देवता रहें हैं, विष्णु या वासुदेव की लोक प्रिय होने के पूर्व रुद्र देव सर्वोच्च देव के रूप में स्वीकृत हो गए थे।

१- व्याधिप्लाय रुद्राय........शां श्र०सू ३।४।८

२- कुलार्णव तंत्र-१।११-१२

शिव–रुद्र की प्राचीनता के साथ-साथ पाशुपत मत की प्राचीनता भी सिद्ध होती है। अथर्वशिरस् उपनिषद् में पाशुपत व्रत, पशु, पाश आदि तन्त्र के पारिभाषिक शब्दों की उपलब्धि होती है। महाभारत के आधार पर तो पाशुपत मत की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है। महाभारत के नारायणीय पर्व २ में उल्लिखित धार्मिक मतों में पाशुपत भी एक मत हैं।[1] इस प्रसंग में कहा गया है कि शिव श्री कंठ ने जो उमा के पति, भूतों के स्वामी और ब्रह्म देव के पुत्र हैं, इस मत के सिद्धान्तों का प्रकाशन किया था।[2]

महाभारत काल में पाशुपत मत बहुत आदरणीय समझा जाता था। भीष्मपर्व एवं द्रौण पर्व में अर्जुन द्वारा शिव से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने का वर्णन है। सौप्तिक- पर्व में अश्वत्थामा शंकर से खड्ग प्राप्त करता है तथा अनुशासन पर्व में भगवान कृष्ण, जो भागवत संप्रदाय के आराध्य हैं (वे) संतान के लिए शैवाचार्य उपमन्यु से विधिवत् दीक्षा ग्रहण करते हैं। शंकर की आराधना करते हैं और वर प्राप्त करते हैं। वैशेषिक सूत्रों के अंत में प्रशस्तवाद महर्षि कणाद की वंदना करते हुए कहते हैं कि कणाद ने भगवान महेश्वर के प्रसाद से योग और आचार्य द्वारा ये सूत्र प्राप्त किए। न्याय भाष्य पर उद्योतकार भारद्वाज अंत में पाशुपताचार्य कहे जाते हैं।

पुराणों में तो शैवमत संबन्धी अनेकानेक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। महाभारत काल में या पूर्व में भी 'शिव भागवत' शब्द का प्रयोग पाया जाता है, क्योंकि अथर्वशिरस् उपनिषद् में 'भगवत्' शब्द भगवान शंकर के लिए और पातंजल महाभाष्य में उपासक के लिए 'शिवभागवत शब्द का प्रयोग हुआ है।[3]

१— महाभारत, नारायणीय पर्व, -३४, ५०।६४

२— वही, श्लोक ६७

३— पाणिनि-५।२।७६

वायु पुराण (अ० २३) और लिंग पुराण (अ० २४) के अनुसार माहेश्वर ब्रह्मदेव से कहा था कि युगों के अट्ठाइसवें प्रत्यावर्तन में कृष्ण द्वैपायन के समय में जब वासुदेव जन्म लेंगे तब मैं श्मशान में पड़े हुए एक मृत शरीर में प्रविष्ट होकर लकुलिक् नामक ब्रह्मचारी के रूप में अवतार लूंगा। यह घटना कायावतार या कायारोहण में घटेगी। मेरे चार शिष्य होंगे–कुन्तिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य अंत में पाशुपत अपने शरीर में भस्म रमाकर माहेश्वर योग को करते हुए लोक लोक को प्रस्थान करेंगे। लिंग पुराण में जहाँ भगवान शंकर के अट्ठाइस अवतारों का वर्णन है वहां भविष्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि द्वापर में लकुलीश नाम से भगवान शंकर का अवतार होगा। इससे सिद्ध होता है कि यह अवतार श्रीकृष्ण के पीछे हुआ और उनके बाद लकुलीश पाशुपत–सम्प्रदाय के उद्धारक हुए होंगे।

शैवमत की प्राचीनता–

साहित्यिक अभिलेख, पुरातात्विक अभिलेख, सिक्के आदि इस बात के साक्ष्य हैं कि शैवमत अत्यन्त प्राचीन एवं सर्वाधिक प्रचलित रहा है।

साहित्यिक अभिलेख और शैवमत–

साहित्यिक अभिलेखों में सबसे पहले 'अश्वघोष' की कृतियाँ हैं। अश्वघोष बौद्धमतावलम्बी कवि एवं विद्वान थे जो ईसा की प्रथम शती में हुए तथा राजा कनिष्क के समकालीन थे। अपनी कृति 'बुद्ध चरित नामक' काव्य में भगवान शिव का कई बार उल्लेख किया है। इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि उस समय शिव का स्वरूप सारभाव से वैसा ही था, जैसा रामायण और महाभारत मे। बुद्ध चरित के १०।३ श्लोक में वे 'वृषध्वज' के नाम से उल्लेख किए गए है, १।९३ में वे 'भव' से तथा १।८६ में देवी कहकर पार्वती का उल्लेख किया गया है, उनको स्कन्द की माता माना गया है।

दूसरी कृति 'सौन्दरानन्द में शिव अथवा उनकी उपासना के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया गया है। १०।९ श्लोक में 'आम्बिक' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिससे स्कन्द अथवा गणेश अभिप्रेत हो सकते हैं। अश्वघोष की अन्य कृतियां हैं जिनमें शिव अथवा शैवमत का कोई उल्लेख नहीं है।

साहित्यिक अभिलेख–

ईसा की पहली अथवा दूसरी शताब्दी में शूद्रक कवि रचित 'मृच्छकटिक' नामक रूपक है। इसके उपोद्घात को छोड़कर, जो शेष है, इस ग्रंथ में शिव और शैवमत सम्बन्धी अनेक उल्लेख मिलते हैं। एक स्थल पर शिव के विभिन्न नाम– शिव, ईशान, शंकर और शंभु दिए गए हैं। (१।४१) एक अन्य स्थल पर दक्ष–यज्ञ का संकेत भी मिलता है। (१०।४५)। महादेवी के रूप में पार्वती का उल्लेख तथा उनके द्वारा शुंभ और निशुंभ के वध की कथा का संकेत भी मिलता है। (६।२७) शिव-पार्वती का स्वरूप चित्रण इसमें रामायण तथा महाभारत की तरफ मिलता है। इस रूपक के छटवें अंक के एक श्लोक में विष्णु, ब्रह्मा और शिव की त्रिमूर्ति के सारूप्येण एक की ओर स्पष्ट संकेत है। (६।२७)। इन ग्रंथों के अतिरिक्त तीन ग्रंथ और मिलते है जिनकी रचना सम्भवतः ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में हुई थी। ये ग्रंथ हैं मनुस्मृति, भारतीय नाट्यशास्त्र तथा वात्स्यायन का कामसूत्र।

मनुस्मृति में रुद्रों (एकादश रुद्रों) का उल्लेख मिलता है। (३।२८४)। अनेक देवताओं का उल्लेख तो मिलता है, परन्तु न तो शिव का, न उनकी सहधर्मिणी का कहीं उल्लेख हुआ है। एक स्थल पर शिव पर चढ़ाये नैवेद्य को ग्रहण करने का निषेध किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि इस समय शिव की अर्चना इन वस्तुओं से की जाती थी।

"भारतीय नाट्य शास्त्र" में शिव का पूर्ण रूप से सत्कार और सम्मान किया गया है। उनको यहाँ "परमेश्वर", कहा गया है। (१।१)। अन्य स्थलों पर उन्हें 'त्रिनेत्र', 'वृषांक', नीलकंठ आदि उपाधियां दी गई हैं। (१।४५)। २४, ५, १०)। इसी ग्रंथ में शिव का 'नटराज' रूप प्रमुख है। शिव को योगाचार्य तथा भरत पुत्रों को 'सिद्धि' सिखाई जाने वाला कहा गया है। (१।६०)।

'कामसूत्र' में शिव का, केवल एक बार आदि के मंगल श्लोक में उल्लेख किया गया है। इसमें कहा गया है कि भगवान शिव के अनुचर नन्दी ने ब्रह्मा द्वारा रचित एक वृहदाकार विश्वकोष के कामशास्त्र–सम्बन्धी भाग की व्याख्या की थी।

सिक्के–

ईसा के प्रथम तीन शताब्दियों के हमें अनेक सिक्के मिलते हैं। इनमें भी हमें तत्कालीन शैवमत सम्बन्धी अनेक सूचनायें प्राप्त होती हैं।

ईसा की प्रथम शताब्दी के प्राचीन कुशान राजाओं के सिक्के हैं। विम कादफिसस' के दो सोने के सिक्के के पिछले भाग पर शिव का चित्र अंकित है। दोनों में शिव खड़े हुए दिखाए गए हैं उनके दक्षिण हाथ में त्रिशूल है। पहले सिक्के में शिव का वाहन वृषभ उनके पास खड़ा है तथा दूसरे में त्रिशूल के अतिरिक्त भगवान एक कमण्डल और व्याघ्रचर्म हाथ में ग्रहण किए हुए हैं। दोनों में शिव द्विबाहु हैं। रामायण–महाभारत में शिव के जिस स्वरूप की कल्पना की गई थी, यह चित्र उसी का प्रतिरूप हैं। इन सिक्कों पर लेख इस बात की सिद्ध करता है कि राजा शैवमतावलम्बी था, क्योंकि इनमें उसको 'महीश्वर' की उपाधि दी गई है।[1] इसी राजा के ताँबे के सिक्कों पर भी सोने के सिक्कों के सदृश्य ही शिव का चित्र अंकित है, किन्तु इनकी विशेषता यह है कि इसके चारों ओर प्रकाश मण्डल विद्यमान है।[2]

इन सिक्कों के बाद 'कनिष्क के सिक्के मिलते हैं। इसके एक सोने के और अनेक तांबे के सिक्कों की पीठ पर भगवान शिव का चतुर्भुज चित्र अंकित है।[3] इस चित्र के साथ जो लेख हैं उसकी यूनानी लिपि है जिसे 'opho' पढ़ा जाता है जिसका संस्कृत रूप 'ईश' होता है। कनिष्क के अनेक अन्य सिक्के हैं जिनमें शिव के पास एक हिरन खड़ा हुआ दिखाई देता है।[4] इसका संकेत 'शिव' के

---

1. (a) Lahore Museum Catalogue of Coins [White head] Plate XVII, no. 31 – 33
   Calcutta ,, ,, ,, ,, [Smith] Plate 68, no. 1—12
   (b) Lahore ,, ,, ,, ,, [White head] P. XVII no. 31, 33
   Calcutta ,, ,, ,, ,, [Smith] P. 68, no. 1-12
2. Lahore ,, ,, ,, ,, [White head] Plate XVII, no. 36
3. (a) Lahore ,, ,, ,, ,, ,, plate XVII, no. 65
   P. XUII, no. 106-108
   (b) Calcutta ,, ,, ,, ,, [Smith] P. 74, no. 64-77
4. Calcutta ,, ,, ,, ,, ,, P. 70, no. 9-10

पशुपति के और है और हमें सिंधु घाटी की ३०४ मुद्राओं की याद दिलाता है, जिनके अधोभाग में पुरुष देवता की पीठिका के नीचे दो हिरन दिखाए गए हैं। कनिष्क के कुछ और सिक्के भी हैं जिनमें द्विभुजी शिव का चित्र है।[1] कनिष्क का उत्तराधिकारी हुविष्क था, जिसका समय ईसा की पहली शती के अंत में और दूसरी शती के आरम्भ में पड़ता है। इसके सिक्कों पर भी द्विभुजी और चतुर्भुजी शिव के चित्र मिलते हैं।[2] यूनानी लिपि में उन पर भी वही लेख है। कुछ सिक्कों में हिरन दिखाई देता है और शिव अपने हाथ उसके सींगों पर रखे हुए हैं।[3] एक सिक्के पर शिव शशांक-भूषित है।[4]

हुविष्क का एक दूसरा सिक्का विवादास्पद है,[5] इस पर चित्र तो लगभग एक सा है जैसा अन्य सिक्कों पर परन्तु शिव यहां धनुर्धारी हैं और उनका मुख दाईं ओर मुड़ा है। सम्भवतः यह शिव के पिनाकी स्वरूप का चित्रण है, लेकिन इस सिक्के पर एक अस्पष्ट लेख भी है। डा० स्मिथ ने इस लेख को अनुमान करके 'गणेश' पढ़ा था।

हुविष्क का एक और सिक्का भी महत्व का है, क्योंकि इसमें पहली बार शिव की बहुमुख आकृति का चित्रण किया गया है।[6] हुविष्क के उत्तराधिकारी वासुदेव के सिक्के भी इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं। इन पर द्विभुज शिव का चित्र अंकित हैं और उसके सब वैसे ही लक्षण हैं जैसे पुराने सिक्कों पर।[7]

---

1. Lahore Museum Catalogue of Coins [White head] Plate XVIII, no. 110-114
2. ,, ,, ,, ,, ,, ,, Plate XIX, no. 150-52, 153-156
3. Calcutta ,, ,, ,, ,, [Smith] P. 78, no. 16-17
4. ,, ,, ,, ,, ,, ,, P. 86, no. 31
5. ,, ,, ,, ,, ,, ,, p. 80, no. 46
6. ,, ,, ,, ,, ,, ,, p. 78, no. 15
7. ,, ,, ,, ,, ,, ,, p. 84, no. 1-34

इसके एक सिक्के पर फिर शिव का बहुमुख चित्र दिखाई देता है।[1] जो हुविष्क के सिक्के के चित्र के समान ही है। वासुदेव के अन्य सिक्कों पर सिंहासनारूढ़ एक स्त्री देवता के चित्र भी पाए जाते हैं। जो अपने हाथों में केश बंध और सींगी लिए हुई है।[2] इस चित्र के देवता के सम्बन्ध में जानकारी अब भी अज्ञात है।

वासुदेव के उपरान्त 'कनेस्को' के सिक्के हैं, जो दूसरी शताब्दी के अन्त में शासक था। हुविष्क के सिक्कों जैसा उसके सिक्कों पर भी द्विबाहु शिव का चित्र अंकित है।[3] इसी राजा के अन्य सिक्कों पर यूनानी लिपि 'ap△o×pq' यह लेख मिलता है।[4] इसका संस्कृत रूपांतर अर्वाश किया जा सकता है।

इनके पश्चात ईसा की तीसरी शती में कुशान राजा सासानी वसु के सिक्के मिलते हैं। उनके सिक्कों पर भी सभी देवता के चित्र अंकित है, और यूनानी लिपि का कुछ लेख 'ap△o×pq' है।[5] वसु के उत्तराधिकारी वासुदेव के सिक्कों पर फिर द्विबाहु शिव का चित्र अंकित है और लेख भी वही 'ohpo' है।[6] अन्त में होरमोज्द द्वितीय और वराहन के सिक्कों पर शिव का वृषभ सहित चित्र अंकित है।

---

1. Lahore Museum Catalogue of Coins [W.H.] P. XX, no. II
2. ,, ,, ,, ,, ,, [W.H.] P. XIX, no. 227-230
3. ,, ,, ,, ,, ,, [W.H.] P XIX, no. 231-235
4. Calcutta ,, ,, ,, ,, [Smith] P. 88, no. 5-8
5. Lahore ,, ,, ,, ,, [W.H.] P. XIX, no. 236
6. ,, ,, ,, ,, ,, [W.H.] P. XIX, no. 238-39

इस प्रकार इन सिक्कों से ज्ञात होता है कि ईसा का पहली तीन शताब्दियों में शैवमत सारे उत्तर भारत में फैला हुआ था। शिव के जो चित्र इन सिक्कों पर अंकित हैं, उनसे ज्ञात है कि शिव के स्वरुप में रामायण-महाभारत से लेकर तब तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था।

शिलालेख एवं अन्य साहित्यिक अभिलेख—

ईसा की चौथी शती में साहित्यिक अभिलेख तथा शिलालेख प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते है जिनसे तत्कालीन शैवमत का पता चलता है।

समुद्र गुप्त कालीन प्रयाग के अशोक-स्तम्भ पर हरिषेण की प्रशस्ति में गंगावतरण की कथा का उल्लेख किया गया है। शिव को यहाँ पशुपति कहा गया है।

चन्द्र गुप्त द्वितीय के समय की उदयगिरि गुफा के शिलालेख में, उस गुफा का एक शैव भक्त—द्वारा सन्यासियों के विश्राम के लिए समर्पित लिए जाने की चर्चा है। इससे पता चलता है चन्द्रगुप्त शैवों को संरक्षण प्रदान करते थे जब कि वे परम भागवत थे।

भानकुंवर शिलालेख (पाँचवीं शती) में एक बौद्ध भिक्षु बुध मित्र ने बड़े सम्मान से सम्राट कुमार गुप्त का नाम लिया है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमार गुप्त के राज्यकाल में कविवर कालिदास भी हुए थे। उनकी कृतियों से स्पष्ट हो जाता है कि ईसा की पहली चार शताब्दियों में शैवमत ने कहाँ तक प्रगति की थी।

शैव धर्म के लोक प्रचलित रूप का चित्र हमें कुमार संभव और मेघदूत काव्यों में मिलता है। कुमार संभव में शिव-पार्वती-परिणय, मदन-दहन और स्कंद जन्म की कथा अपने पूर्ण विकास में दिखाई पड़ती हैं। कवि ने उनको लेकर महाकाव्य की रचना की है। मेघदूत में शिव कैलासवासी कहने के साथ अति उग्र अथवा 'भैरव' रूप में उनके ताण्डव नृत्य की भी चर्चा भी हुई है। इसके साथ-साथ इस काव्य में शिव की उपासना किस प्रकार की जाती थी, इसकी भी एक झलक मिलती है।

कालिदास के ग्रंथो व गुप्तवंश के पहले दो—तीन राजाओं के शिलालेखों के समय तक पौराणिक युग प्रारम्भ हो चुका था। सम्राट 'कुमार गुप्त' के उत्तराधिकारी 'स्कंदगुप्त' के समय के बिहार--शिलालेख में मातृकाओं का फिर उल्लेख किया गया है और पहली बार उनका स्कंद के साथ साहचर्य किया गया है। इन मातृकाओं का मृच्छकटिक में उल्लेख है।

स्कंदगुप्त के समय बाद हमें छठी शताब्दी में मंडासोर-स्तंभ पर यशोधर्मा का लेख मिलता है। इसके आदि में जो मंगलश्लोक है।
उसमें शिव की स्तुति की गई है। यहाँ भयावर और शक्ति शाली देवता के रूप में शिव की कल्पना की गई, जिसके प्रचंड सिंहनाद से देवताओं के हृदय दहल जाते हैं। मंडासोर स्थान पर ही इसी राजा का एक शिलालेख और मिलता है। इसमें शिव के सौंदर्य रूप का ध्यान किया गया है और उन्हें शम्भु कहा गया। उनका देवाधिदेव माना गया है। शिव के आदेश से ही ब्रह्मा विश्व के सृजन, पालन और संहार का क्रम चलाते हैं, इसी कारण परमपिता का पद पाते हैं।

आदित्यसेन का प्रस्तरलेख (सातवीं शताब्दी) नकली तालेश्वर ताम्रपट् (आठवीं शताब्दी), गुजरात के दन्तिवर्मा का शिलालेख (नवीं शताब्दी) खजराव (ग्यारहीं शताब्दी), जाजल्लदेव का मल्हर-प्रस्तर लेख (बारहवीं शताब्दी) लखनपाल का बुदाऊं शिल्पलेख (तेरहवी शताब्दी) आदि शैवोपासक राजाओं के उपरिलिखित लेख प्रमाणित करते हैं कि शैवमत अत्याधिक प्रचलित रहा है।

अन्य स्फुट अभिलेख—

इनसे इतर कई स्फुट अभिलेख शैवमत की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। उदयपुर (राजस्थान) से १४ मील उत्तर में एक लिंग जी महादेव के मंदिर के समीप एक अभिलेख में यह मिलता है कि भृगु से आराधित होकर शिव भृगुकच्छर देश में एक लकुट धारी पुरुष के रूप में जन्म लेगें। उसमें पाशुपत-योग के ज्ञाता, भस्म वल्कल और जटाधारी कुशिक आदि मुनियों का भी उल्लेख हुआ है। इस अभिलेख की तिथि विक्रम संवत् १०२८ दी हुई है।

चित्र प्रशस्ति नामक एक अन्य अभिलेख में कहा गया है कि शिव-संहारक लकुलीश के रुप में अवतरित हुए और लाट देश के कारोहण में रहे। वहां पाशुपत व्रतों के संपादन के लिए कुशिक, गार्ग, कौरुष और मैत्रेय नाम के चार शिष्य शरीर धारण करके प्रकट हुए तथा वे चारों ४ संप्रदायों के जन्मदाता कहलाये। यह अभिलेख वि० सं० १२७४-१२९६ के बीच का लिखा प्रतीत होता है। विक्रम की आठवीं शताब्दी के आरम्भ में आने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने ने अपने यात्रा-विवरण में लगभग १२ बार पाशुपतों की चर्चा की है।

एक अन्य अभिलेख इस बात का साक्षी है कि लकुलीश अपने नाम और सिद्धान्तों की रक्षा के लिए मुनिनाथ चिल्लुक के रूप में उत्पन्न हुए। इस अभिलेख की तिथि विक्रमी संवत् १००० दी हुई है।

काँचीपुर के मन्दिरों के अभिलेख इस बात के साक्ष्य है कि शैवमत छठवीं शताब्दी में उन्नत अवस्था में था। पल्लव राजा राजसिंह द्वारा निर्मित मन्दिर के देवता (राज सिद्धेश्वर) पर उनका समय सन् ५५० ई० उत्कीर्ण था।

दक्षिण भारत और शैवमत

शैवमत प्रारम्भ से ही वैष्णवमत का मुख्य प्रतिद्वन्दी रहा है। इसका सर्वाधिक प्रसार द्रविण या तमिल प्रदेश रहा, फिर यह दक्षिण भारत का अत्यन्त प्रचलित मत है दक्षिण भारत में ईसवी सन् के पूर्व से ही प्रचलित था। शैवमत से सम्बंधित विपुल साहित्य का भंडार दक्षिण भारत है। शैवमत के भक्तिपरक साहित्य का रचना काल पांचवी से नवी शताब्दी तक है। दक्षिणी शैवमत के स्रोत आगम, शैव संतों की छन्दोबद्ध वाणियां है इसके साथ-साथ वहां का शैवमत महाभारत और श्वेताश्वर उपनिषदों के रुद्र, तथा रुद्र-शिव संप्रदाय से विशेष रूप से प्रभावित जान पड़ता है।

निष्कर्ष —

श्री रामानन्द दीक्षीतार शैवमत को ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व मानते हैं। इतना अवश्य माना जा सकता है कि रुद्र की लोक प्रियता के कारण, अनेक आर्येत्तर जातियों के देवताओं को इसने अपने में आत्मसात कर लिया होगा ।[1] अत: शैवमत वेद प्रतिपादित नितांत विशुद्ध व्यापक एवं प्रभावशाली प्राचीन मत है। इसे आर्येतर कहना युक्ति-युक नही है ।[2]

भारत वर्ष में शैवमत प्राचीनकाल से ही प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहा है। शैवमत किसी समय जगत व्यापीं मत रहा था। कैलास से कन्याकुमारी तक एव अटक से कटक तक भारत में शिवोपासना किसी न किसी रूप में बराबर प्रचलित रही है। भारत के बाहर कई देशों में शिवोपासना के चिन्ह दिखलाई पड़ते हैं। पूर्व में स्याम देश तक और दक्षिण में यवद्वीप के बालीद्वीप तक महाभारत काल की अवशिष्ट हिन्दू सभ्यता के चिन्हों में शिवोपासना के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

पुरातत्व वेत्ताओं का कथन है कि लिंग पूजा किसी समय सारे संसार में व्याप्त धर्म थी। रूप और विधि के थोड़े बहुत अन्तर के साथ संसार के समस्त मूर्तिपूजक लिंग पूजा करते थे। जिन देशों में हमें आज मुस्लिम और ईसाई सभ्यता का प्रभाव दिखाई देता है उनमें भी ईसा सन् के बहुत बाद तक शिव अथवा लिंग की पूजा प्रचलित थी। मिश्र, यूनान, बेबिलोन, आसुर देश, इटली फ्रांस, अमेरिका, अफ्रीका में तो लिंग पूजा का प्रचार था। भारत के पश्चिम में अफगानिस्तान, काबुल, बलख बुखारा आदि में आज भी अनेक शिवालय देखे जा सकते हैं।

१— शैवमत की प्राचीनता, कल्याणे शिवांक- पृष्ठ— १६७ रामानन्द दी०

२— आर्य संस्कृति के मूलाधार, श्री बल्देव उपाध्याय-पृष्ठ —३४२

शैव संप्रदाय

वदों की भावमयी उपासना को आगे चल कर 'दर्शन' का सामना
ड़ा और इसी दार्शनिक वातावरण की पृष्ठभूमि ने शैवमत का भेदीकरण
यह दो भागों में विभक्त हुआ-आगमिक और पाशुपत। आगमिक को
। भी कहते है। आगमिक दर्शन वैदिक विचार धारा से अधिक प्रभावित
वन्द्ध माना जाता है। इसके अनेक भेदोपभेद है जिनमें शैव सिद्धान्तमत,
वमत, कश्मीरी शैवमत अधिक प्रचलित है। पाशुपत मत कालक्रम में कई
- तत्वों के आ जाने के कारण वेदवाह्य कहा है। इसके भी अनेक भेद
नमे पाशुपत कापालिक, रसेश्वर, गोरखनाथी आदि प्रमुख हैं।

शैवमत में जो भेद हुए वे आगे चल कर संप्रदाय का रूप धारण कर गए
वमत के अनेकानेक भेद संप्रदाय के रूप में प्रचलित हैं।

शैवमत के प्रमुख संप्रदाय निम्न हैं :-

पाशुपत—

इस सम्प्रदाय के संस्थापक नकुलीश या लकुलीश कहे जाते हैं। इस सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र गुजरात है। इस मत के अनुसार भगवान शंकर के १८ अवतार माने गये हैं, जिनमें लकुलीश को आद्य अवतार कहा जाता है। शिवपुराण के अन्तर्गत कारवण महात्म्य से इनका जन्म भड़ौंच के पास 'कारवन' नामक स्थान मे प्रतीत होता है। इनकी मूर्तियां अब भी गुजँर राजस्थान, मालवा तथा गौड़ प्रदेश मे मिलती हैं। इन लकुलीश का समय, मथुरा शैव स्तम्भ के शिला लेख के आधार पर डा० भण्डारकर द्वितीय शताब्दी का उत्तरार्द्ध मानते हैं। इसी समय कुशान वंशी हुविष्क की मुद्राओं पर लकुलीश शिव की मूर्तियां प्राप्त होती हैं। इन मूर्तियों का मस्तक केशों से ढका हुआ है तथा दाहिने हाथ में बीजपुर के फल और बाएं हाथ लगुड या दंड रहता है। तांत्रिक शैवमतों में पाशुपत मत सबसे प्राचीन माना गया है और इसका विकास क्रम उपनिषद काल में ही होने लगा था।[1]

पशुपत शब्द से ही 'पाशुपत' शब्द व्युत्पन्न हुआ है। पाशुपत दर्शन मे जगत के बन्धन में फसा हुआ जीव 'पशु' है। पति पदार्थ 'शिव' है और पाश से अभिप्राय उन सांसारिक बन्धनों से है जो मल, कर्म, और रौद्रशक्ति के भेद से चार प्रकार के होते हैं। जिन्हें जड़ प्राकृत या जगत कहा जा सकता है। पशुपित संबन्धित शास्त्र पाशुपत कहलाता है। जीवों की बद्धता की भावना के उदय होने पर शैवमत में पशुपति नाम और अधिक प्रचलित हुआ दर्शन शास्त्र में पाशुपत दर्शन को अधिक महत्व प्राप्त हुआ। पाशुपति धर्म का वर्णन महाभारत एवं पुराणों में मिलता है।

१— हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, प्रथम भाग, सं० राजबली पाडेय, पृष्ठ—५१२

पाशुपतों का सम्बन्ध न्याय वैशेषिक से घनिष्ट है, गुण रत्न ने नैयायिकों को शैव और वैशेषिकों को पाशुपत कहा है। भारत के पश्चिमी भाग में किसी समय इस सम्प्रदाय का जोर अधिक रहा।[1]

शैव सिद्धान्त मतः—

इस मत का प्रचार एवं प्रसार क्षेत्रतमिल प्रदेश रहा है। तमिल भाषा में लिखे हुए २८ ग्रन्थ[2] तथा १०८ आगम संहितायें प्रचलित हैं,जिसमें इन मत के सिद्धान्त एव शिवाराधन की विभिन्न विधियाँ दी गई हैं, शैव निगम और आगम दोनों को प्रामाणिक मानते हैं। निगम प्रामाणिक एवं ईश्वरोक्त है। आगमों में भी २८ आगम (शैव) ही उनके विशिष्ट आधार है। इनके अतिरिक्त १७० से अधिक उपागम हैं इनमें मत, कुल, कोल, शिल्प, कर्म धर्म व्यापार, उद्योग आदि विषयों का रहस्य बतलाया गया है।

१—श्री बल्देव उपाध्याय ने लकुलीश का समय १७५ ई० सन् के आस पास माना है विक्रम द्वितीय के राज्यकाल मे ६१ गुप्त संवत् (३८० ई०) का एक शिला लेख मथुरा में मिला है जिसमें उदिताचार्य नामक पाशुपत द्वारा गुरू मन्दिर में उपमिनेश्वर और कपिलेश्वर नामक शिवलिंगों की स्थापना का वर्णन है। उदिताचार्य ने अपने को भगवान कुशिक से दशम बताया है, तथा 'न्यायवार्त्तिक, में अपना परिचय पाशुपताचार्य की उपाधि से दिया है। लकुलीश कुशिक के गुरू थे। इस प्रकार एकपीढ़ी के पच्चीस वर्ष मानकर लकुलीश का समय १७५ ई॰ के आस पास सिद्ध होता है और यह वही समय जब कुषाण नरेश हुविष्क के सिक्कों पर लगुडधारी शिव की मूर्तियां मिलती हैं। (पृष्ठ ४५१, भारतीय दर्शन सप्तम सँस्करण)।

२— अट्ठाइस ग्रन्थः—१—कामिक २—योगज ३-चिन्त्य, ४-करण ५—अजित ६—दीप्त ७-सूक्ष्म ८-सहस्त्र ९- अंशुमत १०—सुप्रभेद ११-विजय १२- निः श्वास १३-स्वयभुव १४—अनिल १५-वीर १६—रौरव १७-मुकुट १८-विमल १९—चन्द्रज्ञान २०—बिम्ब २१—प्रोद्गीत २२—ललित २३-सिद्ध २४—सन्तान २५—सर्वोतर २६-पारमेश्वर २७-किरण २८ वातल

इस दर्शन के प्रतिपाद्य तीन तत्व हैं—शिव, शक्ति और बिंदु। शिव को इस दर्शन में संसार का मूल कारण, शक्ति को उनकी सहायिका तथा महा-माया या बिंदु को संसार का उपादान कारण माना गया है। प्रारम्भ में शिव, शक्ति के साथ लयावस्था में रहते हैं, किन्तु सृष्टि स्थिति संहार तिरोभाव तथा अनुग्रह नामक पंच कृतियों के संपादनार्थ वे लयावस्था से क्रियावस्था में आते हैं। उनके साथ सृष्टि का उपादान कारण होने के कारण बिंदु या महामाया का भी निवृत्ति प्रतिष्ठा, विद्या, शांति और शान्त्यातीत नामक पांच अवस्थाओं में विकास होता रहता है। शान्त्यातीत अवस्था में पहुंचकर महामाया लयावस्था को प्राप्त हो जाती है।[1] वस्तुतः यह महामाया शिव की शक्ति का ही रूप है।

इस मत में भक्ति की अच्छी मान्यता है। अतः तमिल में उच्चकोटि के शैवभक्त उत्पन्न हुये थे। छत्तीस तत्व इस दर्शन में भी स्वीकृत हुए हैं। किन्तु उनका विकास शिव की माया शक्ति से शुद्ध और अशुद्ध दो रूपों में माना गया है।[2] शैव सिद्धान्त में स्थान पाने वाली माया वेदान्त की माया के समान मिथ्या न होकर नित्य और शिव से भिन्न स्वीकार की गई है।[3]

वीर शैवमत अथवा लिंगायत सम्प्रदायः—

इस मत/संप्रदाय की स्थापना आराध्य सम्प्रदाय के ब्राह्मण मादिराज के पुत्र बसव द्वारा बतलाई जाती है। शैवों का यह सम्प्रदाय वीरशैव अथवा लिंगायत के नाम से प्रचलित है। कर्नाटक प्रदेश इस मत का प्रमुख क्षेत्र है। इस मत/सम्प्रदाय के अनुयायी शिव लिंग की पूजा ही नही करते, बल्कि उसे गले में डाले रहते हैं, इसलिये वे लिंगायत कहलाते हैं। इस मत की प्रधानता बेलगाँव, बीजापुर, धारवाड़ जिलों व मैसूर राज्य में अधिक है।[4] इसका प्रचार दक्षिण भारत में तांत्रिक साधना के रूप में अधिक प्रचलित था।

१— साधनांक—कल्याण—तांत्रिक दृष्टि—कविराज गोपीनाथ।
२— दा आइडिया आफ गाड इन शैव सिद्धान्त — पेज १–८
३— सर्वदर्शन संग्रह-सायण माधवाचार्य-वें० प्रेस० सं०-१९८२ पृष्ठ १६०
४— हिन्दी निर्गुण काव्यधारा व उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि,
डा० गोविन्द त्रिगुणायत—पृष्ठ १८२

वीर शैव प्रागढ़ शिव भक्ति में अनुरक्त रहते हैं। शिव रूपा विद्या में विशेष रूप से रमें होने के कारण वीर शैव कहलाते है।[1]

वीर शैव मत का आरम्भ सृष्टि के साथ बताया जाता है यह पाशुपत मत से भिन्न है तथा इसमें कई प्रकार के दार्शनिक चितनों का समावेश पाया जाता है– शिवाद्वैत, शक्ति विशिष्ठाद्वैत, द्वैताद्वैत, भेदाभेद आदि इस संप्रदाय का प्रमुख ग्रथ 'बसव पुराण' है।

शैवों ने वीर शैव की व्याख्या इस प्रकार की है– 'वी' अर्थ 'जीव' तथा शिव एवं बोधिका विद्या और 'र' का अर्थ 'रमण' करने वाला है। अतः जीव तथा शिव की एकता में रमण करने वाला वाला व्यक्ति वीर शैव कहलाता है।

कश्मीरी शैवमत -

इस मत के प्रधान आचार्यों में सोमानन्द, वसुगुप्त, अभिनव गुप्त आदि प्रमुख है। यह शाखा कश्मीर में उदित हुई। कश्मीरी शैवमत की दो शाखायें है• स्पंद शास्त्र एवं प्रत्यभिज्ञा शास्त्र। स्पंदशास्त्र के कर्ता वसुगुप्त एवं उनके शिष्य कल्लट बताये जाते है। इस संप्रदाय के दो ग्रन्थ शिव सूत्रम् तथा स्पंदकारिका अत्याधिक प्रसिद्ध है जिनमें ५१ श्लोक हैं। कहा जाता है कि स्वयं शिव अथवा एक सिद्ध ने वसुगुप्त को शिवसूत्रों का दर्शन कराया था। ये वसु सूत्र महादेव– पर्वत की एक शिला पर उत्कीर्ण थे। वसुगुप्त को शिव ने उस शिला का दर्शन कराया था तथा प्रत्याभिज्ञा शास्त्र का प्रवर्तन सोमानन्द ने किया।

डॉ० भंडारकर के अनुसार इसके दो भेद है स्पंदशास्त्र और प्रत्याभिज्ञा शास्त्र स्पंद शास्त्र के प्रचारक वसुगुप्त और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के प्रवर्तक है सोमानन्द लेकिन यह विभाजन प० गोपीनाथ कविराज की दृष्टि में ऐतिहासिक दृष्टि म कुछ तंत्रों में सत्य होने पर भी भ्रांतिमूलक प्रतीत होता है।[2]

१— विद्यायां शिवरुपायां विशेषाद्रम् यतः ।
तस्मादेते महाभारत वीर शैव इति स्मृताः ।।
(वेदाशिरस्, सिद्धान्त शिखामास)।

२— कल्याण, शिवाक– कश्मीरी शैव दर्शन के सम्बन्ध में कुछ कविराज गापीनाथ पृष्ठ ८१

उपर्युक्त प्रसिद्ध शैव मतों के अतिरिक्त कापालिक, कालामुख तथा रसेश्वर संप्रदायों की भी प्रसिद्धि है।

कालमुख सम्प्रदाय—

यामुनाचार्य ने 'आगम प्रामाण्ड' में इस संप्रदाय का संक्षेप में वर्णन किया है। कालामुख संप्रदाय कपालपात्र भोजन, शव भस्म स्नान, तत्प्राशन, लगुडधारण, सुराकुम्भ स्थान– आदि विधियों का अनुष्ठान दृष्ट और अदृष्ट सिद्धियों का कारण माना जाता है। यह संप्रदाय अब समाप्त-प्राय है। इसके सिद्धान्त एवं क्रियायें आरम्भ से ही गुप्त रखी गई जिसका फल यह हुआ कि इसकी परम्पराही नष्ट हो गई।

कापालिक सम्प्रदाय—

इस संप्रदाय को भी स्थिति कालामुख की तरह ही है। इसकी भी परम्परा नष्ट हो गई है। सिद्धान्त एवं क्रियायों को गुप्त रखने के कारण इस संप्रदाय की लोक प्रियता एक दम नष्ट हो गई है।

ब्रह्मसूत्र २।२।३५ या ३६ पर अपने भाष्य में रामानुज बतलाते हैं कि कापालिकों का मत है कि जो छह मुद्राओं[1] का तत्वज्ञ है तथा उनके प्रयोग में निष्णात है वह भगासन पर बैठकर आत्मा का ध्यान करता हुआ निर्वाण को प्राप्त करता है। जो अपने शरीर पर इन मुद्रकाओं को धारण करता है, वह जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। इन मुद्रिकाओं के साथ अनेक गुह्य क्रियायोंका विधान इसमें बतलाया गया है।

कापालिक संप्रदाय से ही आगे चलकर गोरखनाथी पंथ निकला जिनका प्रचार समस्त भारत में हुआ। हिन्दी के निर्गुण कवियों का इस संप्रदाय से सीधा संबंध है इस पंथ के अनुयायी योगी, कनफठा दर्शनी गोरख पन्थी आनि विविध नामों से प्रसिद्ध हैं।

१— (१) कंठिका (२) रुचक (३) कुण्डल (४) शिखामणि (५) भस्म (६) यज्ञोपवीत।

रसेश्वर संप्रदाय–

शैव भक्तों का एक संप्रदाय रसेश्वर संप्रदाय के नाम से प्रचलित है। इस सम्प्रदाय में पारे को रसेश्वर माना गया है। साधक उसी के द्वारा सिद्धियों एवं मुक्ति की प्राप्ति मानते है। इस संप्रदाय के तथा इनका कोई पृथक संप्रदाय नहीं दिखाई पड़ता है।

इस संप्रदाय में जीव-मुक्ति का उपाय दिव्य शरीर की प्राप्ति है। व्याधि-ग्रस्त काया ब्रह्म साक्षात्कार में कदापि समर्थ नहीं हो सकती है। अतएव इस शरीर को स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनाना नितांत आवश्यक है। इसका नाम पिण्डस्थैर्य--शरीर की स्थिरता। मुक्ति ज्ञान से प्राप्त होती है। ज्ञान अभ्यास मंत्र द्वारा प्राप्त है। यह तभी संभव है जब शरीर स्थिर हो। शंकराचार्य के गुरु ने ठीक ही कहा है-

> इति-धन-शरीर-भोगान् मत्वाऽनित्यान् सदैव यतनीयम्।
> मुक्तौ सा च ज्ञानात् तच्चाभ्यासात् स च स्थिरे देहे ॥[1]

इस संप्रदाय में पारे का विशेष महत्व है। पारा शंकर जी का वीर्य माना गया है। इसके नाम की सार्थकता ही यह है कि यह संसार के दुखों से मुक्त कर जीव को उस पार पहुंचा देता है–

> 'संसारस्य परं पारं दत्ते सौ पारदः स्मृतः।'

भक्तों ने जहां शंकर के वीर्य को पारा कहा गया वहीं अभ्रक को पार्वती का रज माना है। दोनों के मिलने से जो भस्म तैयार होगी– वह प्राणियों के शरीर को दिव्य बनाने में समर्थ है। नागार्जुन, गोविन्द भगवत्पाद आदि आचार्य इस सम्प्रदाय के सन्दर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस प्रकार शैवमत एक विशिष्ट मत न कह कर विभिन्न मतों में विभाजित होता गया और आज भी इसकी शाखायें फैलती जा रहीं है परन्तु इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि– अद्वैत, द्वैत तथा विशिष्टाद्वैत पर ही अवलम्बित है।

---

1. रसहृदय तंत्र गोविन्द भगवत्पाद

शैवमत के भक्तिपरक साहित्य का निर्माण काल पांचवी से नवीं शताब्दी तक है।[1] शैव मन्त्रों का संकलन नम्बी आण्डर नम्बी (१००० ई०) द्वारा किया गया है, सामूहिक रूप से तिरुमुराई कहा जाता है। इसके पहले भाग को देवारम नाम दिया गया हैं, सम्बन्दर, अप्पर और सुन्दरार के निर्मित छन्द हैं। अन्यों में सबसे महत्वपूर्ण है– माणिक्कवासगर का तिरुवासगम।

आठवीं शताब्दी में आविर्भूत आचार्य सद्योज्योति का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सद्योज्योति के महत्वपूर्ण ग्रंथ– नरेश्वर-परीक्षा, गोरवागम की वृत्ति, स्वायम्भुव आगम पर उद्योत तथा तत्व-संग्रह, तत्व-त्रय, भोगकारिका, मोक्ष कारिका, परमोक्ष निरासकारिका है।

हरदत्त शैवाचार्य, जिनका समय ग्यारहवीं शताब्दी माना जाता है, ने श्रुति सूक्त माला, चतुर्वेद-तात्पर्य संग्रह' में शिव महिमा का प्रतिपादन किया है। बृहस्पति, शंकर नन्दन, विद्यापति, देवबल द्वैताचार्य आदि शैवाचार्य हुए हैं जो तन्त्रालोक में चर्चित हैं।[2] इसी शताब्दी में एक ग्रंथ सेक्करार का पेरियापुराण प्राप्त होता है जिसमें तिरेसठ शैव सन्तों का चरित्र वर्णित है, कुछ महत्वपूर्ण विचार सामग्री सन्निहित है।

मेकण्डेर नामक सन्त दक्षिण भारत में १३वीं शताब्दी में हुए। उन्होंने शिवज्ञान बोधम् नामक ग्रंथ लिखा। जिसमें तत्कालीन समस्त शैव सिद्धान्त का सार केवल बारह संस्कृत अनुष्टुप छन्दों में किया गया है। इसे रौरव आगम के बारह श्लोकों का विस्तृत रूप माना जाता है।[3] अतः यह शैव सिद्धांत के विचारों का आदर्श भाष्य है। शैवों में इसका वही स्थान है जो वैष्णवों में भगवद्गीता का मेकण्डेर के शिष्य अरुलनन्दी शिवाचार्य ने

१– 'संसार के अन्य किसी भी मत ने इससे अधिक मूल्यवान भक्ति-प्रधान साहित्य उत्पन्न नहीं किया तथा उज्जवल कल्पना शक्ति का सहज मनोभाव एवं भावुकता के उत्साह और कथन की ऐसी भव्यता अन्यत्र नहीं देखी गई।'

(बारनेट : दी हार्ट आफ इण्डिया, पृष्ठ–८२)।

२– भारतीय दर्शन : श्री बलदेव उपाध्याय- पृष्ठ– ५६०

३– भारतीय दर्शन : डा० राधाकृष्णन– पृष्ठ– ७२४

'शिव ज्ञान सिद्धियार' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की।

उमापति; जिनका समय १४वीं शताब्दी माना जाता है, के शिव प्रकाशम् एवं तिरु अरुलपयन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

शैव सिद्धान्त वेदों तथा आगमों की दो प्रकार की परम्परा के आधार पर स्थित है।[1] और दोनों के क्रमबद्ध समन्वय का कार्य नीलकंठ ने किया। नीलकंठ ने ब्रह्मसूत्र पर एक भाष्य लिखा और उक्त ग्रंथ की व्याख्या शैव पद्धति के आधार पर की।

शैवमत के प्रमुख सम्प्रदायों पाशुपत, शैव सिद्धान्त मत, लिंगायत, कश्मीरी शैवमत, रसेश्वर आदि पर उपलब्ध आचार्यों द्वारा प्रणीत साहित्य पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

प्रमुख शैव सम्प्रदायों के आचार्यों द्वारा प्रणीत साहित्य—

न्याय वार्तिक के रचयिता उद्योतकर ने 'पाशुपताचार्य' उपाधि से अपना परिचय दिया है जिसका उल्लेख माधवाचार्य ने 'सर्व दर्शन संग्रह' में किया। पाशुपत सूत्रों का मूल ग्रंथ 'महेश्वर रचित पाशुपत सूत्र है। कौण्डिन्य का पंचार्थी भाष्य' इस मत का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस पंचाध्यायी में पाशुपतों के पाँचों पदार्थों का विस्तृत तथा नितांत प्रामाणिक विवेचन है। इस सम्प्रदाय के आचार्यों में विशेष रूप से उदिताचार्य, आचार्य विशेश्वर शंभु, उपमिताचार्य आदि उल्लेखनीय है। शैव साहित्य के सन्दर्भ में कौण्डिन्य की पाशुपत सूत्र सूत संहिता, राजशेखर कृत षड्दर्शन, वृहवृति आदि कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

१— तिरुमूलर: सिद्धान्तदीपिका, नवम्बर १९११, पृष्ठ— २०५
शिवज्ञान सिद्धियार कहता है, वेद और शैवागम एकमात्र यथार्थ दूसरे हैं। इनमें से वेद सामान्य है और सबके लिए खुले हैं। आगम विशिष्ठ हैं और वेदान्त के सारभूत सत्य निहित है। दोनों ही ईश्वर द्वारा प्रदत्त कहे जाते हैं।

तुलना कीजिए, नीलकंठ — वयंतु वेद शिवागमयोः भेदं न पश्यामः (ब्रह्म मीमांसा, पृष्ठ १५६)

3 शैव साहित्य : एक विहंगम दृष्टि

वैदिक काल में ही शिवोपासना प्रचलित है। ऋगवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मणग्रन्थ, सूत्रों, उपनिषद और पुराणों में रुद्र-शिव का वर्णन है। इस प्रकार सारा प्राच्य साहित्य भूत भावन भगवान शंकर के यशोकीर्तन से देदीप्यमान है।

रामायण तथा महाभारत में शैवमतों का वर्णन है। वामन पुराण में शैवों के चार विभिन्न सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है—शैव, पाशुपत, कालामुख और कापालिक।[1]

पुराणों, तंत्रों, क्षेमेन्द्रकृत नर्ममाला, सायण माधवाचार्य रचित सर्वदर्शन संग्रह, हरिभद्र सूरि प्रणीत षडदर्शन समुच्चय तथा विविध भारतीय भाषाओं में शिव के सम्बन्ध में उपयोगी वृतांत इतस्ततः बिखरा पड़ा है।

बादरायण, श्री निवास आदि की टीकाओं में शैवमत एवं शिव सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध होती है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिवपुराण, लिंग पुराण, मत्स्य पुराण, वामन पुराण, कर्म पुराण, स्कंद पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण आदि पुराणों के शैव पुराण ही माना जाता है। तंत्रों में शैवमत को विवरण एवं सिद्धांत आदि मिलते हैं। तंत्रों में तो भगवान शंकर की अनेक विद्याओं के रहस्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। वीरमित्रोदय ग्रंथ में शिवोपासना एवं लिंगार्चन का विस्तृत वर्णन है।[2]

तान्त्रिक श्रुतियों में परब्रह्म, पर शिव और स्थल आदि भिन्न-भिन्न नामो से पुकारा गया है। श्रोतागम रूप शैव संहिताओं को भी 'शिव दर्शन' शैवशास्त्र, शैवतंत्र, सिद्धांत शास्त्र आदि नामों से अभिहित किया गया है।

१- वामन पुराण—६।८६।९१

२- कल्याण, शिवांक, लिंगरहस्य- रामदास गौड़.

शैवागमों का प्रचार उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत में सर्वत्र पाया जाता है, उनमें प्रमुख शैवागम २८ है।[1] जिनमें मुख्य है कामिक, जिसमें वह विभाग भी आ जाता है जो ज्ञान के विषय का प्रतिपादन करता है। इसे मृगेन्द्र आगम का नाम दिया गया है।

प्राचीन काल में शैवागम- प्रवर्तक श्री रेवण सिद्ध, श्री उपमन्यु आदि ने सिद्ध एवं महर्षियों आदि से शिव दीक्षा प्राप्त कर शैवमत का अनुसरण किया। पद्मपुराण में उल्लेख मिलता है कि अगस्त्य मुनि ने श्री रामचन्द्र जी को शिव दीक्षा, शिव व्रतादि, शैव धर्माचरणों का उपदेश दिया था। उपमन्यु से श्री कृष्ण ने शिव दीक्षा ली थी। अतैव शैवागम तथा उसमें प्रतिपाद्य शैव धर्माचरण वैदिक श्रुति के समान आवृत है।[2]

१- (क) शिव कथित आगम- कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण, अजित, दीप्त, सूक्ष्म, साहस्त्रक, अंशुमान, सुप्रभ।

(ख) रुद्र द्वारा कथित आगम- विजय, निश्वास, स्वायम्भुव, आग्नेयक, भद्र, रौरव, माकुट, विमल, चन्द्रहास, मुख्य युग बिब, उद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, नारसिंह, परमेश्वर, किरण, पारहित।

२- मध्यकालीन हिन्दी- कविता पर शैवमत का प्रभाव-

-डा० कमला भंडारी-पृष्ठ-२४

शैवमत के भक्तिपरक साहित्य का निर्माण काल पांचवीं से नवीं शताब्दी तक है।[1] शैव मन्त्रों का संकलन नम्बी आण्डर नम्बी (१००० ई०) द्वारा किया गया है, सामूहिक रूप से तिरुमुराई कहा जाता है। इसके पहले भाग को देवारम नाम दिया गया है, सम्बन्दर, अप्पर और सुन्दरार के निर्मित छन्द हैं। अन्यों में सबसे महत्वपूर्ण है– पाणिवकवासमर का तिरुवासगम।

आठवीं शताब्दी में आविर्भूत आचार्य सद्योज्योति का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सद्योज्योति के महत्वपूर्ण ग्रंथ– नरेश्वर–परीक्षा, रौरवागम की वृत्ति, स्वायम्भुव आगम पर उद्योत तथा तत्व–संग्रह, तत्व-त्रय, भोगकारिका, मोक्ष कारिका, परमोक्ष निरासकारिका हैं।

हरदत्त शैवाचार्य, जिनका समय ग्यारहवीं शताब्दी माना जाता है, ने श्रुति सूक्त माला, चतुर्वेद-तात्पर्य संग्रह' में शिव महिमा का प्रतिपादन किया है। बृहस्पति, शंकर नन्दन, विद्यापति, देवबल द्वैताचार्य आदि शैवाचार्य हुए हैं जो तन्त्रालोक में चर्चित हैं।[2] इसी शताब्दी में एक ग्रंथ सेक्करार का पेरियापुराण प्राप्त होता है जिसमें तिरेसठ शैव सन्तों का चरित्र वर्णित है, कुछ महत्वपूर्ण विचार सामग्री सन्निहित है।

मेकण्डेर नामक सन्त दक्षिण भारत में १३वीं शताब्दी में हुए। उन्होंने शिवज्ञान बोधम् नामक ग्रंथ लिखा। जिसमें तत्कालीन समस्त शैव सिद्धान्त का सार केवल बारह संस्कृत अनुष्टुप छन्दों में किया गया है। इसे रौरव आगम के बारह श्लोकों का विस्तृत रूप माना जाता है।[3] अतः यह शैव सिद्धांत के विचारों का आदर्श भाष्य है। शैवों में इसका वही स्थान है जो वैष्णवों में भगवद्गीता का मेकण्डेर के शिष्य अरुलनन्दी शिवाचार्य ने

१– 'संसार के अन्य किसी भी मत ने इससे अधिक मूल्यवान भक्ति-प्रधान साहित्य उत्पन्न नहीं किया तथा उज्जवल कल्पना शक्ति का सहज मनोभाव एवं भावुकता के उत्साह और कथन की ऐसी भव्यता अन्यत्र नहीं देखी गई।'

(बारनेट : दी हार्ट आफ इण्डिया, पृष्ठ–८२)।

२– भारतीय दर्शन : श्री बलदेव उपाध्याय- पृष्ठ– ५६०

३– भारतीय दर्शन डा० " पृष्ठ ७२४

'शिव ज्ञान सिद्धियार' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की।

उमापति; जिनका समय १४वीं शताब्दी माना जाता है, के शिव प्रकाशम् एवं तिरु अरुलपयन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

शैव सिद्धान्त वेदों तथा आगमों की दो प्रकार की परम्परा के आधार पर स्थित है।[1] और दोनों के क्रमबद्ध समन्वय का कार्य नीलकंठ ने किया। नीलकंठ ने ब्रह्मसूत्र पर एक भाष्य लिखा और उक्त ग्रंथ की व्याख्या शैव पद्धति के आधार पर की।

शैवमत के प्रमुख सम्प्रदायों पाशुपत, शैव सिद्धान्त मत, लिंगायत, कश्मीरी शैवमत, रसेश्वर आदि पर उपलब्ध आचार्यों द्वारा प्रणीत साहित्य पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

प्रमुख शैव सम्प्रदायों के आचार्यों द्वारा प्रणीत साहित्य—

न्याय वार्तिक के रचयिता उद्योतकर ने 'पाशुपताचार्य' उपाधि से अपना परिचय दिया है जिसका उल्लेख माधवाचार्य ने 'सर्व दर्शन संग्रह' में किया। पाशुपत सूत्रों का मूल ग्रंथ 'महेश्वर रचित पाशुपत सूत्र है। कौण्डिन्य का पंचार्थी भाष्य' इस मत का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस पंचाध्यायी में पाशुपतों के पाँचों पदार्थों का विस्तृत तथा नितांत सामाजिक विवेचन है। इस सम्प्रदाय के आचार्यों में विशेष रूप से उदिताचार्य, आचार्य विशेश्वर शंभु, उपमिताचार्य आदि उल्लेखनीय है। शैव साहित्य के सन्दर्भ में कौण्डिन्य की पाशुपत सूत्र सूत संहिता, राजशेखर कृत षड्दर्शन, बृहद्वृत्ति आदि कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

१— तिरुमूलरः सिद्धान्तदीपिका, नवम्बर १९११, पृष्ठ— २०५
शिवज्ञान सिद्धियार कहता है, वेद और शैवागम एकमात्र यथार्थ दूसरे हैं। इनमें से वेद सामान्य है और सबके लिए खुले हैं। आगम विशिष्ट हैं और वेदान्त के सारभूत सत्य निहित है। दोनों ही ईश्वर द्वारा प्रदत्त कहे जाते हैं।

तुलना कीजिए, नीलकंठ — वयंत वेद शिवागमयोः भेदं न पश्याम ब्रह्म मीमांसा, पृष्ठ १५६

शैव सिद्धान्त मत

इस मत के अन्तर्गत प्राप्त होने वाला साहित्य रामकंठ की सद्योज्योति के ग्रंथों पर पांडित्यपूर्ण व्याख्यायें, मार्तंगवृत्ति, नादकारिका, मोक्षकारिका वृत्ति प्रसिद्ध हैं। श्री कंठ सूरि का 'रत्नत्रय', भोजराज रचित तत्व प्रकाशिका, रामकंठ की नाद कारिका, श्री कंठ का रत्नत्रय– अंठ ग्रंथ 'अष्ट प्रकरण' के नाम से विख्यात है।[1]

वीर शैवमत–

इस मत में रेणुकाचार्य, दारुकाचार्य, एकोरामाचार्य, पंडिताचार्य तथा विश्वाराध्य आदि पाँच आचार्यों ने क्रमशः सोमेश्वर, सिद्धेश्वर, रामनाथ, मल्लिकार्जुन तथा विश्वनाथ नामक प्रसिद्ध शिवलिंगों से अर्चित होकर शैवधर्म का प्रचार किया। शिवयोगी शिवाचार्य का सिद्धान्त-शिखा-मार्ग वीर शैवमत का माननीय ग्रंथ हैं।

होयसल वंश के राजाओं के समय में वीर शैवमत का विशेष प्रचार हुआ।[2] पालकुटिकसोमनाथ महान आचार्य के रूप में विख्यात थे। इन्होंने सोमनाथ भाष्य, अष्टक रुद्र पंचव, नमस्कार गद्य, अक्षरांक गद्य, पंच प्रार्थना गद्य, वसवी दाहरण और चतुर्वेद तात्पर्य संग्रह नामक कृतियां उल्लेखनीय हैं। इस मत के हरिहर नामक विद्वान ने शैव भक्तों के चरित्र को सुन्दर काव्य के रूप में लिखा। पदमरस बल्लाव नामक आचार्य का 'दीक्षा बोध' गुरु शिष्य के संवाद रूप से शैव धर्म के सिद्धान्तों के विवरण के रूप अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। देव कवि ने 'कुनुमावलि' नामक आख्यायिका तथा सोमराज ने उदभट काव्य का निर्माण किया।

कश्मीरी शैवमत—

कश्मीरी शैवमत के आचार्यों में प्रमुख रूप से वसुगुप्त, सोमानंद, अभिनव गुप्त, क्षेमराज आदि आचार्य प्रसिद्ध हैं। वसुगुप्त की 'स्पंदकारिका' सोमानंद की 'शिवदृष्टि' तथा अभिनव गुप्त की 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी', तन्त्रालोक, तन्त्रसार परमार्थसार आदि अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं इनके अतिरिक्त खेमराज की शिवसूत्र विमर्शिनी, स्वच्छन्द तन्त्र, विज्ञान भैरव तथा

१– आर्य संस्कृति के मूलाधार– श्री बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३३१

२– आचार्य सायण और माधव पृष्ठ– १६

तथा नेत्र तंत्रपर उद्योतटीका, प्रत्याभिज्ञा हृदय, स्पन्द संदेश, शिवस्तोत्रावली की टीका तथा उत्पल की स्पंद प्रदीपिका, भास्कर-वरदराज का शिवसूत्र वार्तिक, रामकंठ की स्पन्दकारिका विवृत्ति एवं गोरक्षा की महार्थमंजरी कश्मीरी शैवमत से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

रसेश्वर मतः—

इस सम्प्रदाय के आचार्यों में विशेषरूप से नागार्जुन, गोविंद भगवतपाद् तथा विष्णु स्वामी उल्लेखनीय है। इन आचार्यों द्वारा प्रणीत रसेश्वर संप्रदाय का साहित्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस सन्दर्भ में नागार्जुन का 'रस रत्नाकर, गोविन्द भगवत्पाद का 'रस हृदय' तथा विष्णु स्वामी का 'साकार सिद्धि' रसेश्वर सम्प्रदाय की अमूल्य निधियां हैं। रसेश्वर दर्शन पर सायण-पर्याप्त लिखा है।

कापालिक एवं कालमुखः—

इस संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों में विशेषरूप से यामुनाचार्य का नाम उल्लेखनीय है। यामुनाचार्य ने आगम प्रमाण्य में विस्तार से कापालिक एव कालमुख पर प्रकाश डाला है। 'शंकर दिग्विजय' में भी इस मत का साहित्य उपलब्ध है।

इस प्रकार देखते हैं कि शैवमत के विकास के साथ-साथ उसके सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले साहित्य का भी विकास हुआ। वैदिक साहित्य वेद, ब्राम्हण, आरण्यक, उपनिषद और संहिता में शैव सिद्धान्तों का प्रारंभिक रूप मिलता है। उत्तर वैदिक साहित्य के शिवपुराण, लिंग पुराण, स्कंदपुराण मत्स्य पुराण कूर्मि पुराण तथा ब्रह्म पुराण शैव सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। छठी शताब्दी के पूर्व रचे गये आगम ग्रन्थ, जिनको तंत्र कहा जाता है वे शैव सिद्धान्तों के आधार हैं शैव सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले साहित्य मे छठी शताब्दी से लेकर नवी शताब्दी तक रचे गये यामल ग्रन्थों का भी महत्व है इनमें मुख्य आठ हैं—

रुद्र, स्कन्द, ब्रह्म, विष्णु यम, वायु, कुबेर, और इन्द्र।

विभिन्न शैव सप्रदायों के आचार्यों द्वारा प्रणीत साहित्य अत्यन्त महत्व पूर्ण है क्योंकि इन ग्रन्थों में शैव सिद्धान्तों का सदा प्रतिपादन हुआ है।

१—सी० पी० बागची-इवोल्यूशन आफ दी तन्त्रात : कल्चरल हैरिटेज आफ इन्डिया, पृष्ठ २१६

4

शैव-दर्शन

दर्शन का अर्थ—

दर्शन शब्द संस्कृत की 'दृश' धातु से बना है जिसका अर्थ है– देखना। भारतीय दृष्टाओं ने जैसा भी कुछ देखा, जो अनुभव किया, उसे वर्णित किया है। इन सभी संचित किए गए अनुभवों को दर्शन शास्त्र की संज्ञा से अभिहित किया गया है– दर्शन शब्द का व्युत्पत्ति, लभ्य अर्थ है– 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' जिसके द्वारा देखा जाए। इसके अनुसार दृश्यमान जगत का वास्तविक स्वरूप क्या है ? इसकी उत्पत्ति कहां से हुई ? सृष्टि का कारण कौन है ? यह चेतन है या अचेतन ? वस्तु का सत्यभूत वास्तविक स्वरूप क्या है ? इस संसार में आने का क्या लक्ष्य है? हमारे क्या कर्त्तव्य हैं? जीवन जीने के लिए कौन सा सुन्दर साधन-मार्ग है? आदि प्रश्न जिज्ञासु के मन में अनादि काल से उठते रहे हैं। इन प्रश्नों का समाधान करना वस्तुत: दर्शन या दर्शन शास्त्र का क्षेत्र है।

दर्शन की परिभाषा भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की है, जिनमें कतिपय परिभाषायें निम्न हैं :–

'दृश्य जगत की अपेक्षा यथार्थ के ज्ञान का प्रयत्न करना दर्शन है।'

–(ब्रैडले)।

'दर्शन शास्त्र ऐसा विज्ञान है जो परमतत्व के यथार्थ स्वरूप की जांच करता है।'

–(अरस्तू)।

'दर्शन शास्त्र प्रकृति के व्यापक स्वरूप का अन्वेषण है तथा वस्तुओं के व्यापक स्पष्टीकरण का प्रयास है।' –(वेवर अल्फ्रेड)।

'सृष्टि और उसमें मनुष्य के स्थान के सांगोपांग एवं व्यवस्थित रूप पर चिंतन करने एवं इस रूप को व्यक्त करने का प्रयास दर्शन शास्त्र है।'

–(हंडरसन)।

'दर्शन शास्त्र यथार्थता के स्वरूप का विवेचन है।' (एस० राधाकृष्णन)।

'दर्शन' एक शास्त्र है। आगम ग्रंथों के अनुसार 'शास्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति पर इस प्रकार विचार किया गया है—

शासनात् शंसनात शास्त्रं शास्त्र मित्यभिधीयते।
शासनं द्विविधं प्रोक्तं शास्त्रलक्षण वेदिभिः।

मूलतः शास्त्र की व्युत्पत्ति का आधार दो धातुओं से निर्मित हैं—

(क) 'शास'— आज्ञा देना (ख) शंस - प्रकट करना।

शासन करने की दो विधियां या प्रकार हैं—

१— विधि रूप २— निषेध रूप

श्रुति तथा स्मृति में जो अनुष्ठान योग्य बतलाए गए हैं, वे 'विधि' है और जो कार्य निंदित है, वे 'निषेध' कहलाते हैं। अस्तु,

शासन अर्थ में शास्त्र शब्द का प्रयोग धर्मशास्त्र के लिए उपयुक्त है। शंसक अर्थ में 'शास्त्र' शब्द का प्रयोग बोधक शास्त्र के लिए उपयुक्त है— जिसके द्वारा वस्तु के सत्य स्वरूप को प्रकट किया जाये या सच्चे स्वरूप का वर्णन किया जाये।

इस प्रकार 'शासक शास्त्र' क्रिया परक हुआ तथा शासक-शास्त्र ज्ञान परक।

दर्शन शास्त्र अथवा तत्व ज्ञान का जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। दर्शन शास्त्र के सुचिंतित आध्यात्मिक तथ्यों पर ही धर्म प्रतिष्ठित है। धर्म के अध्यात्मिक चिंतन, योग एवं भक्ति तीन पक्ष हैं। धार्मिक आचार के अभाव में दर्शन की स्थिति निष्फल है। दार्शनिक विचारों से परिपुष्ट धर्म ही लोक मान्यता प्राप्त करता है।

शैव दर्शन—

दार्शनिक विचारों से परिपक्व होने के कारण शैवमत वैदिक काल से प्रतिष्ठा प्राप्त करता आ रहा है। इस मत में शिव ही सृष्टि के कर्ता और कारण हैं। शैवाचार्यों ने कारण कार्य सम्बन्ध से दार्शनिक तत्वों का विश्लेषण किया। यही कारण हुआ जिसमें पाशुपत, शैव सिद्धान्त, वीर शैव मत, कश्मीरी

शैवमत एवं रसेश्वर मत है। इनमें अनेक सामान्य तत्वों की मान्यता दीख पड़ती है।

शैव मत के विभिन्न सँप्रदायों की सिद्धान्तिक विवेचना निम्न रूप में प्रस्तुत है:—

माधवाचार्य ने 'सर्व दर्शन संग्रह' में चार शैव दर्शनों की चर्चा की है- (१) पाशुपत दर्शन, (२) शैव सिद्धान्त दर्शन, (३) कश्मीरी शैव दर्शन, (४) रसेश्वर दर्शन।

इनके अतिरिक्त दक्षिण में वीर शैव मतावलम्बियों के आधार पर लिंगायत दर्शन का विकास हुआ, जो संभवतः माधवाचार्य के समय में विकसित नहीं हुआ था। इसी कारण 'सर्वदर्शन सँग्रह' मे इसका समावेश नहीं हुआ था, परन्तु लिंगायत दर्शन समस्त शैव दर्शनों एक महत्व-पूर्ण एवं विशिष्ट स्थान रखता है। रसेश्वर दर्शन में शैव-दर्शन से पर्याप्त भिन्नता है, अतएव शैव दर्शनों में इसको इसलिए सम्मिलित कर लिया जाता है।, क्योंकि इसके समर्थक अपने आपको शैव या माहेश्वर कहते हैं।

मुख्य रूप से भारत में निम्न शैव-दर्शनों का विकास हुआ—

(१) नकुलीश पाशुपत दर्शन (२) शैव सिद्धान्त दर्शन
(३) लिंगायत दर्शन (४) कश्मीरी शैव दर्शन
(५) रसेश्वर दर्शन।

नकुलीश पाशुपत दर्शन:—

नकुलीश पाशुपत दर्शन का विकास शैवों के पाशुपत सम्प्रदाय में हुआ। इसमें शँकर के १८ अवतार माने गये हैं। ये अवतार तीर्थेश कहलाते हैं। प्रथम शंकरावतार अथवा प्रथम तीर्थेश लकुलीश या नकुलीश हैं।

इस दर्शन में पांच पदार्थ माने गए है :–

(१) कार्य	(२) कारण	(३) योग	(४) विधि	(५) दुखान्त[1]
↓	↓	↓	↓	↓
प्रधान से उत्पन्न महत्	ईश्वर या महेश्वर और प्रधान	ॐ का जप ध्यान समाधि	प्रातः मध्याह्न और सायं भस्मलेपन एवं गूढ़ चर्या	मोक्ष

इन पाँच पदार्थों की व्याख्या इस प्रकार है–

(१) कार्य–

वह जो स्वतन्त्र नहीं है। जीव और दोनों का अन्तर्भाव कार्य में होता है, क्योंकि दोनों परमेश्वर के अधीन होने से परतन्त्र हैं। कार्य तीन प्रकार का होता है–

i- विद्या, ii- कला और iii- पशु। जीवों की गुण रूपी विद्या दो प्रकार की होती है- (क) बोध स्वभावा और (ख) अबोध स्वभावा। बोध स्वभावा विद्या चित्त कहलाती है इसके दो भेद और किए गए हैं- (i) व्यक्त और (ii) अव्यक्त क्योंकि ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त बोधात्मक विद्या व्यक्त चित्त के नाम से अभिहित किया जाता है क्योंकि बोधात्मक प्रकाश की सहायता से जिस वस्तु का व्यक्त अथवा अव्यक्त प्रत्यक्ष किया जाता है, उसका सम्यक ज्ञान चित्त से ही होता है।

पशुत्व की प्राप्त करने वाले धर्माधर्मयुक्त विद्या अबोध स्वभावा विद्या है। यह भी दो रूपों में देखी जा सकती है- धर्म और अधर्म। अबोध स्वाभावा विद्या उन नियमों को निर्धारित करती है जिनका पालन जीव (पशु) को करना होता है।

१– पाशुपतों की इस पंच पदार्थों की व्याख्या माधवाचार्य ने 'सर्वदर्शन संग्रह' के अन्तर्गत की है–

ज्ञानमानो यथाशास्त्रं साक्षाद दृष्टिस्तु दुर्लभा।
पंचार्थादि यतो नास्ति यथावत् तत्व निश्चयः॥

कला चेतन पशु के अधीन है और स्वयं अचेतन है। उसके दो रूप हैं (१) कार्य और (२) इन्द्रिय। अतः स्वयं अचेतन पदार्थ कला कहलाता है। कला के दो रूप हैं– कार्य रूप और कारण रूप। कार्य रूपा कलागत पृथ्वी आदि पाँच भूत तथा उनके गुणों का व कारण रूपाकला में त्रयोदश इन्द्रियों का अन्तर्भाव होता हैं। इस तरह कार्यरूपा कलाए दस प्रकार की होती हैं– पृथ्वी आदि पांच तत्व और रूपादि पांच गुण। कारण रूप कलायें तेरह प्रकार की होती है– पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि और अहंकार मन, बुद्धि और अहंकार अतीन्द्रिय है तथा उनके कार्य क्रमशः अध्यवसाय, अभिमान और संकल्प।

पशु वह है जिसमें पशुत्व हो। यह दो प्रकार का होता है– (१) मलयुक्त और (२) निर्मल। इन्हें सांजन और निरंजन भी कहते हैं। मलयुक्त अथवा सांजन पशु वह है जो शरीर और कलाओं से सम्बद्ध हैं,

शरीरेन्द्रिय– विरहित जीव निर्मल अथवा निरंजल कहलाता है।[1]

कार्य

↓ विद्या ↓ कला ↓ पशु

विद्या → बोधस्वभावा, अबोधस्वभावा

बोधस्वभावा → व्यक्त, अव्यक्त

अबोधस्वभावा → धर्म, अधर्म

कला → कारणरूपा, कार्यरूपा

कारणरूपा → १३ प्रकार की (५ ज्ञानेन्द्रियां + ५ कार्मेन्द्रियां + ३ मन, बुद्धि, अहंकार)

कार्यरूपा → १० प्रकार की (५ तत्व + ५ गुण)

मन, बुद्धि, अहंकार → (अध्यवसाय) (अभिमान) (संकल्प)
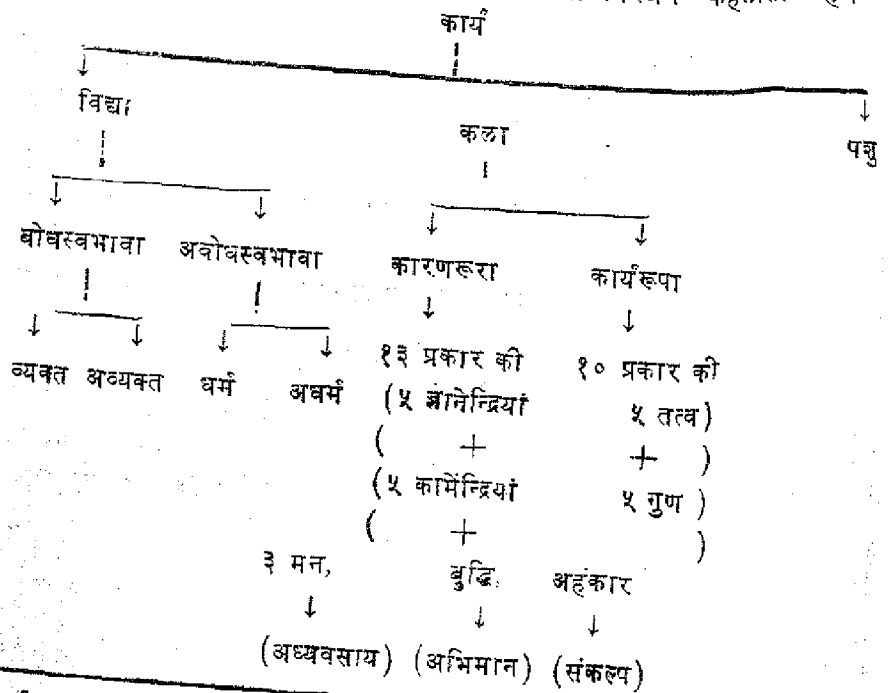
१– पश्यनात् पाश्चनाच्च पशवः। पाशानाम कार्यकरणाख्या कलाः। ताभि पाशिताः बद्धा सन्नि रुद्धाः शब्दादिविषयपरवशा भूत्वाऽवतिष्ठन्ते॥

(कौण्डिन्य भाष्य २१६)

[२] कारण—

सम्पूर्ण वस्तुओं की सृष्टि, उनका संहार तथा इन पर अनुग्रह करने वाले तत्व को कारण कहते हैं। यद्यपि यह एक ही है, तथापि गुण और कर्म के भेदों से अनेक रूपों का ज्ञान होता है। इसकी शास्त्रीय संज्ञा 'यति' है। ज्ञान एवं क्रिया की निरतिशय शक्तियों से सम्पन्न होने को यति कहते हैं।[1] अत वह शाश्वत शासक है। महेश्वर अपरिमित ज्ञान शक्ति के द्वारा जीवों का प्रत्यक्ष करते हैं और अपरिमित प्रभुशक्ति से जीवों का पालन करते हैं। अनन्त ज्ञान शक्ति एवं प्रभुशक्ति के आश्रय होने से परमेश्वर यति है और स्वतन्त्र[2] ऐश्वर्य युक्त आद्य, एक तथा कर्ता है। वह अनुग्रह शक्ति का आश्रय भी है।

समस्त जगत का उत्पादक होने के कारण वह 'कारण' पदवाच्य है। वह क्रीड़ा के लिए जगत का आविर्भाव तथा तिरोभाव करता है। इसी कारण देव तथा उदासीन होने के कारण सर्वकामिक कहा जाता है।[3]

[३] योग—

चित्त के द्वारा ईश्वर के साथ जीव का सम्बन्ध स्थापित होने को योग कहते हैं।[4] यह दो प्रकार का होता है– (i) क्रियायुक्त और (ii) क्रियाहीन। अक्षरों, मन्त्रों का जाप एवं ध्यान आदि की प्रक्रिया क्रियायुक्त योग कहलाती है और अनुभव या तत्वज्ञान क्रियाहीन योग है। क्रिया की निवृत्ति भगवान में एकान्तिक भक्ति ज्ञान एवं शरणागति क्रियोपरम (क्रियाहीन) योग है।[5]

१– प्राप्ति पाति च तान् पशूनित्यत: पतिभवति।

—कौण्डिन्य भाष्य।

२– कर्मकामिनश्च महेश्वरम् पेक्षन्ते, न तु भगवान् ईश्वर:
कर्म पुरुषं या अपेक्षते, अतो न कर्मापेक्ष ईश्वर:

—कौण्डिन्य भाष्य २।६

३– भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, (पृष्ठ- ४६०, ९वां संस्करण)

४– पाशुपत सूत्र- ५।२

५– पातंजल योग का फल केवल्य की प्राप्ति होता है, किन्तु पाशुपतयोग का फल दुख की निवृत्ति के साथ परमेश्वर्य का लाभ है

(४) विधि

वह व्यापार या क्रिया विधि है, जो धर्म की सिद्धि कराती है या महेश्वर की प्राप्ति कराने वाला साधक- व्यापार विधि कहलाता है। विधि के दो भेद हैं– (i) प्रधान और (ii) गौण। प्रधान विधि वह है जो साक्षात धर्म का कारण हो इसे दूसरे शब्दों में चर्या कहा जाता है। इसके भी दो भेद हैं– (i) व्रत और (ii) द्वार। भस्म से स्नान, भस्म से शयन, उपहार, जप एवं प्रदक्षिणा ये पंच विधि व्रत कहलाते हैं। आहार (नियम)- छः बताए गए हैं– हसित, गीत, नृत्य, हुडडुकार, नमस्कार तथा जप्य। द्वार चर्यायें भी छ. हैं– (i) क्राथन- जाग्रत अवस्था में सोए हुए व्यक्ति को समान व्यवहार करना, (ii) स्पंदन- अंगों को इस प्रकार कंपायमान करना जैसे कि वे शक्तिहीन हो, (iii) मंदन- लंगड़ा कर चलना- (iv) शृंगारण- किसी सुन्दर युवती को देखकर कामुक के समान शृंगारिक हाव भाव द्वारा अपने प्रेम में आसक्त दिखलाना- (v) अवितकरण- सभी लोगों द्वारा निन्द्य कार्य को इस भाँति करना जैसे कि करणीय अकरणीय में भेद करने की बुद्धि ही न हो तथा (vi) अवितद् भाषण परस्पर विरोधी और निरर्थक बातें करना।[1]

चर्या की सहायता विधि को गौण विधि कहते हैं, यथा– (i) अनुस्नान (पूजा के उपरान्त शरीर पर भस्म लेपन), (ii) निर्माल्य (देवता पर से हटाए गए कुम्हलाए हुए पुष्प- पत्र का सेवन) (iii) लिंग धारण करना चाहिए।[2]

१- पाशुपत सूत्र- ३।१२।७

१- शैवधर्म और दर्शन- राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

निम्न तालिका के आधार पर विधि को आसानी से स्पष्ट कर सकते हैं–
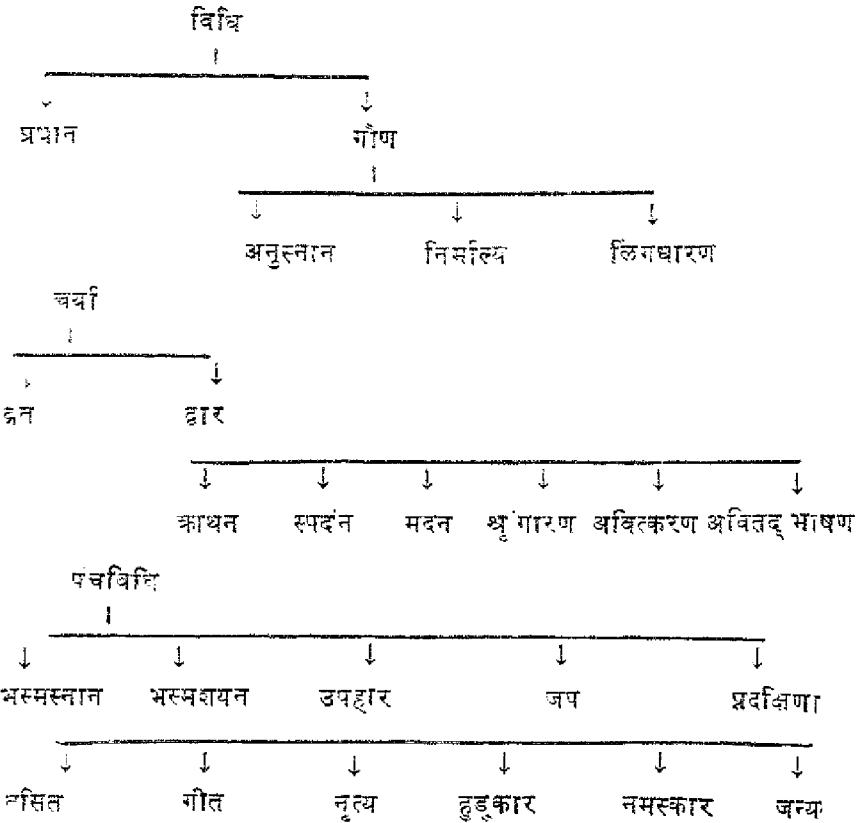
दुःखान्त— दुःखान्त दो प्रकार का होता है–

(I) अनात्मक और (II) सात्मक

अनात्मक– दुःखों का पूर्ण क्षय, केवल दुःखों की आत्यन्ति की निवृत्तिमात्र।

सात्मक— दुःखों की निवृत्ति के साथ परमेश्वर्य का लाभ हो, वह सात्मक है। यह ज्ञान और कर्म की शक्ति से युक्त ऐश्वर्य की प्राप्त होती है। ज्ञान शक्ति को दृक् शक्ति भी कहते है। ज्ञान शक्ति तथा क्रिया शक्ति को प्राप्त करने वाला दुखान्त सात्मक है । दृक् या ज्ञान शक्ति पचविद्या तथा क्रिया शक्ति त्रिविधा मानी गयी हैं।

ज्ञान शक्ति पाच प्रकार की होती– १) दर्शन सूक्ष्म व्यवहित और विप्रकृष्ट वस्तुओं का चाक्षुष स्पर्शादि ज्ञान, (२) श्रवण–समस्त शब्दों का सिद्ध ज्ञान (३) मनन समस्त चिंतित विषयों का सिद्धि ज्ञान, (४) विज्ञान समस्त शास्त्रों पंक्ति और अर्थ के साथ ज्ञान होना तथा (५) सर्वज्ञत्व सर्वज्ञता की स्वतः सिद्ध गुरू के द्वारा उपदिष्ट तथा अनुपदिष्ट सभी विषयों में समास, विस्तार, विभाग और विशेष के द्वारा तत्व के रूप में सम्बद्ध और सदैव प्रकाशित तत्व ज्ञान की प्राप्ति ।

क्रिया शक्ति—

यह एक होते हुए तीन प्रकार की मानी गई है–

(१) मनोजवित्व– किसी कार्य की तत्क्षण करने की सामर्थ्य,

(२) कामरुपित्व– इच्छामात्र से अनन्तरूप, शरीर या इंद्रियाँ धारण कर सकना ।

(३) विकरणधर्मित्व– इन्द्रियों की सहायता के बिना सब पदार्थों का जानना और करना, अर्थात इन्द्रिय-व्यापार निरुद्ध हो जाने पर भी निरतिशय ऐश्वर्य से सम्पन्न रहना ।

इस तरह पाशुपत मार्ग द्वारा निर्धारित लम्बी चर्चा के अन्त में साधक के ज्ञान एवं क्रिया की सिद्धियों को प्राप्त करता है ।

शैव सिद्धान्त दर्शन–

शैव सिद्धांत के नाम से प्रसिद्ध इस दर्शन का विकास तमिल प्रदेश में प्रचलित शैव मत के विचारकों ने किया । इसे शैव दर्शन भी कहते हैं । शैव सिद्धांत की दार्शनिक दृष्टि भेद– प्रधान यानी द्वैतवादी है । इसके अनुसार तीन रत्न माने जाते हैं—शिव, शक्ति और बिन्दु । ये तीनों रत्न ही समस्त तत्वों के अधिष्ठाता हैं । उपादान रूप से प्रकाशमान होते है । शुद्ध तत्वमय जगत के कर्ता शिव, करण शक्ति तथा बिन्दु हैं । यहीं महामाया है । यही बिन्दु शब्द ब्रह्म, कुण्डलिनी, विद्याशक्ति तथा व्योम, इन विचित्र भुवन तथा भोग्य रूप में परिणत होकर शुद्ध जगत की सृष्टि का कर्ता है क्षुब्ध होने पर इस बिन्दु से और शुद्ध देह, इन्द्रिय भोग और भुवन की उत्पत्ति होती है, दूसरी ओर शब्द का उदय होता है- शब्द सूक्ष्मनाद और अक्षर बिन्दु । इनका कारण भूत बिन्दु जड़ होने पर भी शुद्ध है ।

शिव दो शक्तियों से युक्त हैं—

(१) समवायिनी और (२) परिग्रह रूपा।
शिव की स्वरूप शक्ति समवायिनी कहलाती है। यह परम शिव में नित्य समेत भाव से विद्यमान रहती है परिग्रहशक्ति अचेतन तथा परिणाम शालिनी है। यही बिन्दु के नाम से अभिहित की गई है। इसके दो रूप हैं— (१) शुद्ध और (२) अशुद्ध जिन्हें क्रमशः महामाया और माया कहा जाता है। महामाया सात्विक जगत (शुद्ध अध्वा) का उपादान कारण है, जबकि माया प्राकृत जग (अशुद्ध अध्वा) का उपादान कारण होती है। जब परमेश्वर अपनी समवायिनी शक्ति से बिन्दु का आघात करते हैं, तब उसमें क्षोभ उत्पन्न होने से शुद्ध जगत का निर्माण होता है और माया से क्षुब्ध होने पर प्राकृत जगत (मायाध्वा) की उत्पत्ति होती है।[1]

शैव सिद्धान्त के अनुसार तीन पदार्थ माने जाते हैं—
(अ) पति, (ब) पशु (स) पाश। इनका विवेचन आगमों के विद्या, क्रिया, योग एवं चर्या नामक चार पदो के अन्तर्गत प्राप्त होता है।

तीन पदार्थ–

[अ] पति–

पति पदार्थ से अभिप्रेत शिव है जो शक्ति समन्वित है। दीक्षादि शिवत्व प्राप्त की अवस्थायें हैं। शिव परमेश्वर्य, स्वातन्त्र्य, सर्वज्ञत्व, सर्वद्रष्टा आदि गुणों से युक्त हैं। मुक्त जीवों तथा विद्येश्वरादिकों में शिवत्व का निवास रहता है। शिव नित्यमुक्त, नित्य निर्मल निरविशद।

अर्थज्ञान - क्रिया शक्ति से समन्वित है। संसार कार्य है, परमेश्वर

---

१ - जायतेऽध्वायतः शुद्धो वर्तते यत्र लीयते।

स: बिन्दुः परनादाख्यः नाद बिन्दुर्गं कारणम्॥

(रत्नत्रय, का० २२)

कारण हैं। वह शरीरधारी - वह पंचमयात्मक [1] है। ईशान इनका मस्तक है, तत्पुरुष उनका मुख है, अघोर उनका हृदय है, कामदेव उनका गुह्य अंग है और सद्योजात् उनके चरण है। वह सर्वज्ञ एवं शक्तिमान है। पशुओं को पाश बन्धन से मुक्त करने हेतु तथा ध्यान हेतु वे शिव का शरीर धारण करते हैं ईशानादि शक्ति से, निर्मित होने के कारण उनका शरीर शक्ति कहलाता है- मलाद्यसम्भवात् शक्ति वपुर्नैताहशं प्रभोः।[2]

लयावस्था एवं भोगावस्था ये दो शिव की अवस्थायें हैं। जब शक्ति समस्त व्यापारों को समाप्त कर रूपमात्र में अवस्थान करती है, तब शिव शक्तिमान होकर लयावस्था को प्राप्त करते हैं। यह अवस्था उनकी निष्क्रिय अवस्था भी कहलाती है। इसके प्रतिकूल सक्रिय अवस्था शिव की भोगावस्था होती है। जिस समय शक्ति उन्मेष को प्राप्त कर बिन्दु[3] को कार्योत्पत्ति के लिए अभिमुख करती है।

१- ये पाँच मंत्र तै० आ० (१०, ४३-४७) और महानारायणीय उप० (१७) में है टीकाकार उनको शिव के पांच मुख सद्योजात, (कामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान) बतलाता है। ये शिव के पांच रूप भी कहे गए है। हेमाद्रि (दानखंड, भाग १, पृष्ठ ७८९, ७९२ बिब्ल०इंडिया) ने एक विशेष दान का उल्लेख किया है जिसमें शिव के इन पाँच रूपों की सोने या अन्य धातु की बनी मूर्तियों के दान देने का वर्णन है। प्रत्येक को देते समय एक श्लोक पढा जाता है। एक शैव ग्रन्थ ने इन पांच रूपों को क्रमशः पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और आकाश से अभिन्न बतलाया है। एक अन्य ग्रंथ ने उन पाँच रूपों को इन तत्वों का सृष्टा कहा है (वीर, शैव चिन्तामणि)- 'वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत' भंडारकर पृ०-१४२ हि० अनु०

२- श्रीमृगेन्द्रागम।

३- शरीर बिन्दु है। बिन्दु और शिव का संबंध श्री कंठाचार्य ने बताते हुये कहा है-

'स हि तादात्म्यं सम्बन्धी जड़ेन जडिभावहः।
शिवस्यानुपमाखण्ड चिद्रैनकं स्वरूपिणः॥

आर कार्योत्पन्न करके शिव को ज्ञान और क्रिया में समृद्धि करती है, वह शिव की भोगावस्था कही जाती है। भोजराज ने तत्व प्रकाशिका में शिव की सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव व अनुग्रहण को 'कृत्य पंचक' कहा है जिसके शिवलीन रहते हैं। शुद्धाध्व विषयक इन पंच कृत्यों के कर्त्ता परम शिव है, परन्तु कृच्छाध्व (अशुद्धाध्व) विषयक इन पंच कृत्यों का विधान अनन्तादि विद्येश्वरों के द्वारा होता है।[1]

(ब) पशु–

पशु जीवात्मा है, जो मलों एवं पाशों से आवृत रहता है। मलों एवं पाशों से मुक्त होने पर शिवत्व को प्राप्त करता है। पाशों से तात्पर्य उन सांसारिक बन्धनों से है जो मल, कर्म, माया एवं रोधशक्ति के भेद से चार प्रकार के होते हैं जिन्हें जड़ प्रकृति या जगत कहा जाता है।[2] जीव को कर्मानुसार फल का दाता शिव ही है। पाश हटने पर वह नित्य एवं निरतिशय ज्ञान-क्रिया शक्तियों से सम्पन्न होकर वह चैतन्य रूप शिव बन जाता है। मुक्त जीव शिव है जो नित्यमुक्त एवं पाँच मन्त्रों के शरीर वाले शिव की अनुकम्पा से मुक्त होते हैं। यद्यपि वे शिव हो जाने पर भी वे स्वतन्त्र नहीं होते प्रत्युत नित्यमुक्त शिव के अधीन रहते हैं।

पशु का निरूपण करते हुए श्री बलदेव उपाध्याय लिखते हैं कि, 'अणु' परिछिन्न रूप तथा सीमित शक्ति से समन्वित क्षेत्रज्ञ जीव पशु कहलाता है। वह न तो चार्वाक की भांति देह रूप है, न नैयायिकों के समान प्रकाश्य है, न जैनियों के समान अव्यापक है, अपितु व्यापक, प्रकाश रूप और अनेक है। वह साँख्य पुरुष के समान अकर्ता नहीं है, क्योंकि पाशों के दूरीकरण के अनन्तर शिवत्व प्राप्ति होने पर उसमें निरतिशय ज्ञान शक्ति तथा क्रिया शक्ति का उदय होता है, अतः जीव सिद्धान्त मत में कर्त्ता माना गया है।[3]

१– कारिका संहिता- ७, तत्वप्रकाशिका, भोजराज।

२– पाशश्चतुर्विधो मलकर्ममाया रोधशक्ति भेदात्। –स० सं०, पृष्ठ- १६५

३– भारतीय दर्शन- पृष्ठ- ४७२, सप्तम संस्करण –डा० बलदेव उपाध्याय

दार्शनिक भाषा में श्री रामदास गौड़ ने पशु (जीव) का वर्णन इस प्रकार किया है- पशु पदार्थ जीवात्मा महत् क्षेत्रादि पदवाच्य, देहादि भिन्न, सर्व व्यापक, नित्य अपरिछिन्न, दुर्ज्ञेय एवं कर्त्तास्वरूप है।[1]

पशु तीन प्रकार के होते हैं .-

(क) विज्ञानाकल—

विज्ञानाकल पशु दो प्रकार का होता है। प्रथम वे जिनके कलुष समाप्त हो चुके हैं तथा दूसरा जिसके कलुष समाप्त नहीं हुआ है। कलुष समाप्त होने पर ये विधेश्वरों के पास पहुंचा दिए जाते हैं। विधेश्वर आठ हैं। (१) अनन्त, (२) सूक्ष्म, (३) शिवोत्तम, (४) एक नेत्र, (५) एक रुद्र, (७) त्रिमूर्ति, । श्रीकंठ तथा (८) शिखंडी। शिव कलुष समाप्त पशुओं को विद्येश्वरत्व के पद से अलंकृत करता है तथा असमाप्त कलुष पशुओं को वह मन्त्री पद देता है, जो कि सात करोड़ है।[2]

डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ने विज्ञानाकल पशु को इस प्रकार व्याख्यायित किया है- 'जिन पशुओं में विज्ञान, योग तथा सन्यास से या भोगभाव से कर्मक्षीण हो जाते हैं तथा जिनमें कर्म क्षय के कारण शरीर बन्ध का उदय नहीं होता है, विज्ञानाकल कहते हैं।[3]

(ख) प्रलयाकल पशु—

मल और कर्म पाश बद्ध जीव को प्रलयाकल जीव कहते हैं।

प्रलयाकल पशु की दो कोटियाँ होती हैं-

(१) पक्वमल पशु और (२) अपक्वमल पशु। ये जीव प्रलयकाल में माया के गर्भ में पड़े रहते हैं। प्रलय दिशा में शक्ति पात होने से मायपि मल तो नहीं रहता है, परन्तु आणव मल तथा कार्मीण मल की सत्ता बनी रहती है। ... पक्व मल पशु को तो मोक्ष

१- हिन्दुत्व- रामदास गौड़, पृष्ठ- ६९२।७३, प्रथम संस्करण।

२- वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत- भंडारकर, पृष्ठ- १४३

३- शैव एवं वैष्णव धर्म और दर्शन- चतुर्वेदी, पृष्ठ- ५३

प्राप्त होता है तथा अपक्वमल पशु को पुर्यष्टक से संश्लिष्ट होकर अपने धर्मों के अनुसार अनेक जन्म ग्रहण करना पड़ता है। पुर्यष्टक सूक्ष्म शरीर है, जो ३६ तत्वों वाला है। उन तत्वों की विभिन्न प्रकार से गणना की गई है। ये छत्तीस तत्व इस प्रकार है– चार अन्त, करण, ७ तत्व (भोग साधन काल, काल, नियति, विद्याराग, प्रकृति और गुण, पंचभूतात्मा, दसों इन्द्रियां और पाँच रूप, रस, स्पर्श आदि विषय इन अपक्व पाश द्वव जीवों में से जो अधिक पुण्यवान होते हैं, उन्हें दयालु शंकर पृथ्वीपति बना देते हैं।

(ग) सकल पशु—

सकल पशु भी दो प्रकार के होते हैं–

प्रथम वह जिसका कलुष परिपक्व हो चुका है तथा द्वितीय वह जिसका कलुष परिपक्व नहीं हुआ है। इस प्रकार ये पक्वमल सकल पशु एवं अपक्व सकल पशु के नाम से भी अभिहित होते हैं। पक्वमल वाले पशुओं को भगवान शंकर अपने शक्ति पात से मंत्रेश्वर पद प्रदान करते हैं। इनकी संख्या एक सौ अठारह मानी जाती है। उन पाशों का इतना परिपाक हो जाता है कि उन्हीं के आग्रह से रोध शक्ति के सर्वथा विनाश हो जाने पर परमेश्वर आचार्य में प्रविष्ट होकर दीक्षा के द्वारा उनको मोक्ष प्रदान करता है।

अपक्वमल वाले पशु अपने कर्मानुसार इस संसार में भ्रमण करते हुए नाना प्रकार के विषयों का भोग करते हैं, ये बद्ध है अर्थात् ये भवकूप में गिर जाते हैं।[1]

(स) पाश—

इसे मल भी कहा जाता है। पाश चार प्रकार के होते हैं–

(१) मल, (२) कर्म, (३) माया और (४) रोध शक्ति। मल वह पाश है जो तुषतण्डुलवत आत्मा (पशु) की ज्ञान एवं क्रिया शक्ति को तिरोहितकर देते है। तुष धान के अंकुरित होने का कारण होता है, उसी मल देहादि की उत्पत्ति का हेतु है। जिस प्रकार की ताम्र की कालिमा रस शक्ति

१– शैव एवं वैष्णव धर्म और दर्शन –डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, –पृष्ठ – ५४

से निवृत्त होती है, उसी प्रकार यह मल शिवशक्ति से निवृत्ति होता है।[1]

फल के इच्छुक व्यक्ति जो करें, वह कर्म है अथवा धर्माधर्म का नाम कर्म है। फलार्थ जीवों से किए गए धर्माधर्म रूप, बीजांकुर, न्याय से अनादि-कार्य-कलाप को कर्म कहते हैं। ये बीज और अंकुर के समान प्रवाह के रूप में अनादि काल से चले आ रहे हैं।

माया वह शक्ति है, जिसमें प्रलय काल में समस्त संसार परिमित हो हो जाता है। (√मा) तथा जिससे सृजन काल में उद्भूत है (आ+√या)। माया शब्द 'मा' और 'या' दो शब्दों से बना है, अतः जगत की मूल प्रकृति का नाम माया है। माया शैव तंत्र में वस्तुरूपा कही गई है।[2] यह वेदान्त के समान अनिर्वचनीया नहीं है। शैव दर्शन माया को एक और नित्य कहता है। जिस प्रकार बिन्दु (महामाया) शुद्ध सृष्टि (शुद्धाध्वा) का उपादान कारण है, उसी प्रकार माया अशुद्ध सृष्टि का मूल कारण है।

रोध-शक्ति शिव की शक्ति है, जोकि अन्य तीन पाशों में अधिष्ठित होकर पशु के यथार्थ स्वरूप को छिपा देती है, अतः स्वयं भी पाश कहलाती है। वह अपना कार्य सम्पन्न करती है, क्योंकि वह वाक् शक्ति है, जिसके द्वारा वस्तु का नामकरण किया जाता है और इस तरह उनका स्वरूप निर्धारित किया जाता है।[3]

इसके अतिरिक्त शैव सिद्धान्त में चार पादों का प्रतिपादन किया गया है, जो इस प्रकार है–

१– मल की निवृत्ति के विषय में भोजराज ने तत्व प्रकाशिका में इस प्रकार लिखा है–

एको ह्यनेक शक्तिर्दृक् क्रिययोश्छादको मलः पुंसः।
तुषत तण्डुल वज्ज्ञेयस्ताम्राश्रित कालिका वद् ॥

(तत्त्वप्रकाशिका, का०-९)

२– माया च वस्तुरूपा मूलं विश्वस्य नित्या सा।

–तत्वप्रकाशिका, कारिका √)

३– शैव सिद्धान्त दीपिका - शम्भुदेव, शोलापुर– १९०९, पृष्ठ ११७

१ विद्यापाद –

इसके अन्तर्गत तीन पदार्थों (पति, पशु, पाश) की व्याख्या मंत्र एवं मंत्रेश्वरों के महत्व का निरूपण है। दीक्षा क्रम का महत्व भी है जो परम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए आवश्यक हो जाता है।

२—क्रियापाद:—

इसमें मंत्रसिद्धि, संध्योपासना, पूजा, जप, हवन, शाश्वत आनन्द की प्राप्ति के लिए नैमत्तिक कर्म, आचार्य एवं साधक का अभिषेक तथा व्यक्ति को अपने अभ्युदय और निःश्रेयस के लिए आवश्यक दीक्षादि विधियों का वर्णन मिलता है

३—योगपाद:—

इसमें ध्यान और योग की व्याख्या है। योगपाद में छत्तीस तत्वों, उनके अधिष्ठाता देवों, विभिन्न लोकों के अधिपति, जीवात्मा, सर्वेश्वर आत्मा, शक्ति, जगत की माया एवं महामाया के प्रत्यक्ष, सांसारिकता मे पड़े हुए व्यक्तियों के लिए सिद्धि, सूक्ष्मता, लघुता, आदि प्राप्ति, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान एवं समाधि तथा शरीर में मूलाधार या नाभि से आरम्भ होने वाले चक्रों की स्थितियों का उल्लेख किया गया है।

४—चर्यापाद:—

इसमें तप पवित्रारोपण, प्रतिष्ठा शिव लिगों के स्वरूप, उमा एवं महेश्वर के दृश्य लिंग, गणपति, स्कन्द, नन्दी जपमाला तथा श्राद्ध का वर्णन है। इस पाद के अन्तर्गत निर्दिष्ट कर्मों के सहकारी तथा प्रकाशक विषयों का समावेश है प्रतिषिद्ध कर्म इस प्रकार हैं—

(१) अन्य देवता का प्रसाद खाना, (२) ईश्वर की वस्तुओं का -उपभोग, (३) पशु हत्या आदि।

साधन मार्ग और शैवसिद्धान्त मत:—

शैव सिद्धान्त की दार्शनिक दृष्टि द्वैतवाद पर आधारित है। अतः साधना का जो प्रकार वर्णित है, वह भी द्वैतवाद को ही दृष्टि में रखकर किया गया है

देहादिकों में आत्माभिमान-लक्षण मोह ही पूर्ण स्वरूप में संकोच उत्पन्न कर देने से ग्रंथि रूप है। इस ग्रन्थि के हटने से जीव की अपनी स्वाभाविक शक्तियों का आविर्भाव होना ही मोक्ष है अज्ञान बन्धन के प्रक्षीण होने के कारण भी जीव शरीर धारण करता है तथापि वह मुक्त है।[1]

मलापयन के साधन के विषय में कहा गया है कि जीव में स्वतः कोई सामर्थ्य नहीं है, वह स्वयम मल को हटाने में असमर्थ है। ज्ञान, तप आदि तीव्रतर उपाय भी मलापयन में असमर्थ है, क्योंकि सुतीक्ष्ण असिधारा भी अपने आपको नहीं काट सकती है।[2] मलापयन केवल शिव की अनुग्रह शक्ति से ही हो सकता है जिसे तांत्रिक भाष में शक्तिपात कहा जाता है। यह वल्लभ संप्रदाय की पुष्टि के समकक्ष है। भगवान शिव के अनुग्रह से ही जीव भव-बन्धन से मुक्त होकर शिवत्व को प्राप्त करता है। यह अनुग्रह शक्ति दीक्षा है।[3] आचार्य मूर्ति भगवान इस दीक्षा के द्वारा शिष्य को उद्धार योग्य बनाते हैं और उसे भव-बन्धन से उन्मुक्त कर स्वरूपादित करा देते हैं।[4]

दीक्षा तथा शक्तिपात गुणात्मक रूप से समान है। केवल उनमें स्तर भेद है। इसी कारण दोनों को अनुग्रह शक्ति कहा जाता है। त्रिक दर्शन मे

१– प्रक्षीणपुण्यपापो विग्रह योगेऽप्यासो मुक्तः।

(परमार्थ सार, का० ६१)

२– असिधारा सुतीक्ष्णापि न स्वात्मच्छेदिका यतः।

मोक्षकारिका, का० ६७।

३– दीयेन ज्ञाने सद्भावः क्षीयते पशु बन्धना।

दानक्षेपण संयुक्ता दीक्षा तेनेह कीर्तिहा।

–(तंत्रालोक-अभिनव गुप्त)

४- आचार्य संस्थितो देवों दीक्षा शक्तयेव मंघति।

स्व शक्त्योद्धृतान् पुंसो मंत्र साधन साध्यया॥

–(मोक्षकारिका का० ९६)

भी प्रत्याभिज्ञा के लिए दीक्षा की आवश्यकता बनी रहती है।[1] दीक्षा तत्व तंत्र एक निगूढ़ रहस्य है आगम ग्रन्थों में इसका वर्णन। विस्तार से प्राप्त होताहै

तंत्रों में ज्ञानशक्ति और क्रिया शक्ति को अभिन्न माना गया है। क्रिया के साथ ही ज्ञान-चैतन्य का उदय करता है। विशुद्ध ज्ञान होने से क्रियाशक्ति स्वतः अविर्भूत हो जाती है। केवल्यज्ञान के उदय हो जाने से मुक्ति प्राप्त नहीं होती है, क्रिया शक्ति का उदय होना आवश्यक माना गया है इसके अभाव में मुक्ति जीव में ऐश्वर्य का संचार नहीं हो पाता।[2] दीक्षा के द्वारा जीव में क्रियाशक्ति की नंसर्गिक उत्पत्ति हो जाती है और बद्ध जीव शिवत्व का लाभ प्राप्त कर लेता है।[3]

सारांशतः कहा जाता है कि शक्ति विहित शिव सृष्टि करते हैं। रामानुजाचार्य की भाँति इसे विशिष्टाद्वैत के अत्यन्त निकट पाते हैं। यह शैवमत आगे चलकर विशिष्टाद्वैत के रूप में विकसित हुआ। शम्भुदेव और श्रीकंठ शिवाचार्य ने इसका वर्णन किया है। वायवीय संहिता के अवतरणों द्वारा भी यह समर्थित प्रतीत होता है।

१— स्वातन्त्र्यमहिमैवायं देवस्य यदसौ पुनः।
स्वं रूपं परिशुद्धं सत् स्पृशत्यप्यणुतामयः॥
(तन्त्रालोक जिल्द ८, १०।१६३)

२— क्रियाशक्ति का अर्थ –
सर्वकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः।
(तन्त्रसार, १ आहिन्क)

३— मोक्षस्य नैव किंचिद् धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र।
अज्ञानग्रन्थिभिदा स्वशक्त्यभिव्यक्तता मोक्षः।
(आँचार्य अभिनवगुप्त परमार्थ सार का० ६०)

३—लिंगायत अथवा वीर शैव दर्शन:—

वीर शैव संप्रदाय शैवमत में विशिष्ट स्थान रखता है जिस प्रकार वेदान्त में अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत औचित्य भेदाभेद आदि संप्रदाय प्रसिद्ध है, उसी प्रकार विशिष्टाद्वैत संप्रदाय के अन्तर्गत वीर शैव अथवा शक्ति विशिष्टाद्वैत संप्रदाय आता है। इस मत के अनुयायी शिवलिंग की पूजा ही नहीं करते बल्कि उसे गले में डाले रहते हैं। इसीलिए वे लिंगायत के नाम से भी प्रचलित हैं।

इस मत को सैद्धान्तिक दृष्टि से शक्ति विशिष्टाद्वैतवाद का नाम दिया गया है। 'भेदाभेद' अथवा 'द्वैताद्वैत दर्शन भी इस मत के अन्य नाम है।[1]

वीर शैवमत सिद्धान्त के अन्तर्गत जीव, जगत, सृष्टि, शक्ति शब्दों का प्रयोग विशिष्ट अर्थों में किया जाता है। शैव दर्शन होने के कारण शिव शब्द विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त होता है। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण निम्न रूप में प्रस्तुत है—

१—शिवतत्व:—

सच्चिदानन्दमय अद्वितीय परब्रह्म शिवतत्व है, जो स्थल कहलाता है। यह चराचर जगत जिसमें उत्पत्ति और लय को प्राप्त होता है, वही ब्रह्म स्थल के नाम से पुकारा जाता है।

स्थीयते लीयते यत्र जगदेतच्चरा चरम्।
तद् ब्रह्म स्थलमित्युक्तं स्थल तत्व विशारदैः ॥

महत् आदि परमब्रह्म या शिव तत्व में स्थिति है तथा उसी में लीन भी हो जाते है इसमें प्रकृति तथा पुरुष से समुद्भुत विश्व सर्व प्रथम स्थिति होता है और सबके अन्त में लय हो जाता है, इसी से उसे स्थल कहते हैं (प्रथम भाग 'स्था' स्थान वाचक है तथा द्वितीय भाग 'ल' लय वाचक है) 'इ' का नाम स्थल इसलिए भी रखा गया है कि समस्त चराचर जगत का आधार है और समस्त प्रकाश पुंजों एवं समस्त आत्माओं का धारण करता है।

1-A hand book on Vir Saivism: Dr Nandi math, Page 96-97

यह परमपद चाहने वाले पुरुषों के लिए परमपद है, अतैव यह एक तथा अद्वैत स्थल कहलाता है ।[1]

वीर शैव के अन्तर्गत सांख्य सदृश छत्तीस तत्वों को स्वीकार किया जाता है,[2] जिनमें मुख्य– शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, माया, विद्या, पुरुष, प्रकृति मन तथा अहंकार हैं ।

जब परमशिव ज्ञान शक्ति से एकाकार होकर 'मै सर्वज्ञ हूं', इस प्रकार के अभिमान को प्राप्त करता है, तब उसे शिवतत्व कहते हैं। परम शिव जब क्रिया शक्ति में लीन होकर 'मैं सर्वकर्त्ता हूं' ऐसे अभिमान से युक्त होता है, तब शक्ति कहलाता है। परमेश्वर में चित् शक्ति की प्रधानता हो जाती है तब वह शिव तत्व कहलाने लगता है ।[3]

शिव की स्वच्छ शुभ कान्ति निर्गुण परमेश्वर के स्वाभाविक निर्मलत्व की प्रतिच्छाया है। परमेश्वर तत्व ही शिवतत्व है।

अपनी शक्ति में क्षोम होने पर यह स्थल दो में विभाजित हो जाता है– (१) लिंग स्थल (२) अंग स्थल। लिंग स्थल शिव या रुद्र है तथा वह पूजनीय एवं उपासनीय है। अंग स्थल पूजक या उपासक जीवात्मा है।

१— वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक-डां० भंडारकर, पृष्ट–१५२

२— सच्चिदानन्द स्वरुप सत्य नित्य आद्यन्तरहित और सर्वशक्ति समन्वित उस परमशिव ब्रह्म में अविनाभाव संबंध में विद्यमान विमर्श शक्ति का स्फुरण ही तत्वरूप में परिणत होता है ये तत्व ३६ प्रकार के होते है।
- शैव एवं वैष्णव धर्म और दर्शन - डां० रा० प्र० चतुर्वेदी
पृष्ठ– ६३

३– चित प्राधान्ये शिवतत्वम्, आनन्द प्राधान्ये शक्ति तत्वम्
—तन्त्रसार, पृष्ठ–७३-७४

इसी प्रकार शक्ति अपनी इच्छा से स्वयं दो मे बिभक्त होती। एक भाग शिव पर आश्रित हैं, कला कहलाता है तथा जीवात्मा पर आश्रित दूसरा भाग भक्ति कहलाता है। शक्ति ग्रहण शील होती है, जो उसे क्रियारत करती है तथा जगत से संलग्न कर देती है। भक्ति ग्रहण शीलता से मुक्त है। वह कर्म एवं जगत् से पराड़-मुख करती है और मुक्ति प्रदान करती है। शक्ति से अद्वय शिव पूजनीय बनते हैं और भक्ति से जीव पूजक बनता है। अतएव शक्ति लिंग या शिव में स्थित है तथा भक्ति अंग या जीवात्मा में। इसी भक्ति द्वारा जीव तथा शिव का संयोग होता है।

लिंग स्थल अंग स्थल के भी तीन-तीन भेद होते हैं। यद्यपि इन विभिन्न अंगों एवं लिंगों की सत्ता पृथक-पृथक दिखाई पड़ती है, तथापि अंत में शुद्धात्मा अंग-नामक जीव का लिंग शिव में सामरस्य प्राप्त करना ही लिंग रंग 'सामास्य' कहलाता है। यही शिव है, जीव का ऐक्य है और यही शिव तथा जीव का ऐक्य बिशिष्टाद्वैत मत का सारांश है।

२— **लिंग विवेचन**— बीर शैव मत में लिंग को साक्षात् शिव माना गया है। कुछ लोगों का विचार है कि लिंग उनका बाह्य चिन्हमात्र है, पर ऐसा नहीं है। लिंग स्थल को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) भावलिंग, (२) प्राण लिंग, और (३) इष्ट लिंग।

(१) भाव लिंग—

कलाओं से रहित तथा देश काल से अपरिछन्न है। यह सूक्ष्म तथा परम से परे है यह श्रद्धा पर अवलम्बित है।

(२) प्राण लिंग—

मनोग्रह्य होने के साथ-साथ यह दो भेदों में प्राप्त होता है— सकल और निष्कल।

(३) इष्ट लिंग–

समस्त पदार्थों का प्रदाता होने से इसे इष्ट लिंग से अभिहित किया जाता है। सकल एवं निष्कल दो रूपों में यह भी प्राप्य है। यह चक्षु ग्राह्य है। क्लेशों का अपनयनकर्ता है अतः यह सावधानी से पूजित होता है।

भावलिंग परमतत्व है, प्राण लिंग परमात्मा का चित होने से परम तत्व का सूक्ष्म रूप और इष्ट लिंग आनन्द होने से स्थूल रूप है। तीनों लिंग क्रमशः आत्मा, चैतन्य एवं स्थूल रूप है। ये तीनों लिंग प्रयोग, मंत्र और क्रिया से विशिष्ट होकर कला, काम और बिन्दु का रूप धारण करते हैं। इन तीनों लिंगों में से प्रत्येक के दो-दो भेद होते है—

(१) भाव लिंग– महा लिंग और प्रसाद लिंग
(२) प्राणलिंग – चर लिंग एवं शिव लिंग।
(३) इष्ट लिंग– गुरु लिंग और आचार लिंग।

निम्न तालिका से लिंग विभाजन सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है[1]–
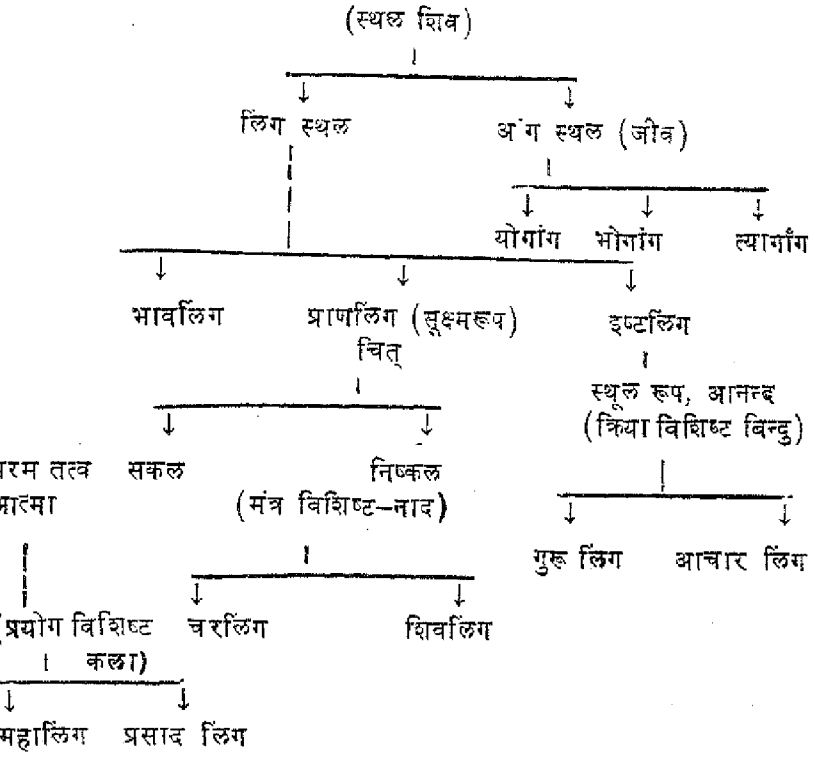
१— शैव धर्म और दर्शन– डा॰ राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी पृष्ठ–६४

३— शक्ति

वह विशेषण जो परम शिव ब्रह्म में अपृथक् सिद्ध होकर रहने वाला। अग्नि और दाहजनक शक्तियों की भांति परमात्मा (शिव) और उसकी शक्ति का सर्वथा अभेद। शक्ति के दो रूप हैं— (१) सूक्ष्म चिद-चिद्विशिष्ट शक्ति (२) स्थूल चिद चिद्विशिष्ट शक्ति। इनसे क्रमश: 'पराशिव' तथा जीव का ग्रहण होता है। 'शक्ति विशिष्टाद्वैत' पद के विग्रह से शक्ति विशिष्ट परमात्मा और जीवात्मा के एकीकरण का ज्ञान होता है। शक्ति को तंत्र ग्रन्थों में शिव या ब्रह्म की छाया कहा गया है।[1]

शक्ति और परमात्मा एक दूसरे के अन्योनाश्रित हैं। जगत् परमात्मा का शक्ति रूप ही है। परमात्मा शक्ति से समुतन्न है यह शक्ति परमात्मा में गुप्त रूप से निवास करती। सिद्धान्त शिखामणि में शक्ति की नित्यता के सम्बन्ध में कहा गया है।[2]

'सिद्धान्त शिखामणि' में वर्णित शक्ति की नित्यता पर टिप्पणी करते हुए आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इस प्रकार अपने विचार प्रस्तुत किए हैं- सच्चिदानन्द पर शिव की वह शक्ति समस्त भुवन-निर्माण के लिए इस परमशिव से समवेत होकर उनकी इच्छानुसार साक्षात् स्वरुप रहती है, अर्थात परशिवा से भिन्न वह विमर्श शक्ति विश्वोत्पादन में कारणीभूत हुआ करती है।[3] 'सिद्धान्त शिखामणि' से यह भी ज्ञात होता है कि नाना तरह की विश्व सृष्टि करने वाली विमर्श नामक पराशक्ति जिसमें अविनाभाव सम्बन्ध प्रतिष्ठित है, वही ब्रह्म और विश्व भाजन कहलाता है।"

१— कुंजिकातन्त्र, प्रथम अध्याय।

२— यदातमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासच्छिव एव केवल:।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥
तदीया परमा शक्ति: सच्चिदानन्दलक्षणा।
समस्त लोकनिर्माण समवाय स्व रूपिणी ॥
तदिच्छया भवत्साक्षात तत्स्वरूपानुकारिणी।
(सिद्धान्त शिखामणि, परिच्छेद-२)

३— भारतीय दर्शन : आचार्य बलदेव उपाध्याय पृष्ठ— ४६२

शिव और शक्ति के सम्बन्ध को समवाय सम्बन्ध कहा जाता है।[1] इसका अस्तित्व केवल शिव पर निर्भर है। माया शक्ति या प्राकृत शक्ति इसी समवायिनी शक्ति से उत्पन्न होती है। सूर्य और प्रभा, चन्द्र और चन्द्रिका के समान अभिन्न सम्बन्ध को, जो सम्बन्ध पृथक न किया जा सके, उस सम्बन्ध को समवाय कहते हैं।

शिव शक्तिमान हैं शक्ति उनकी इच्छा है, जिससे वे सब कुछ कर सकते हैं। अतः न शिव शक्ति रहित है और न शक्ति शिव से पृथक है। शक्ति के बिना शिव अपूर्ण है और शक्ति भी शिव के बिना अपूर्ण होती है।[2] इसी कारण शिव प्रकाश रूप और शक्ति विमर्श या स्फूर्ति रूप है। यह सम्बन्ध शिव प्रतिबिम्ब रूप भी माना गया है। जिस प्रकार चने के छिलके के अन्दर दो दल निकलते हैं उसी प्रकार परात्पर तत्व भी शिव और शक्ति के रूप हैं। यह शक्ति ही शिव के सारे देह कृत्य करती है। शक्ति द्वारा ही शिव विश्व ब्रह्मांड की सारी क्रियायें करते हैं शक्ति और शक्तिमान में जो भेद कल्पना है, वह एक भेद का आभास मात्र है।[3] वे दोनों एक ही हैं, शिव विषयी है, शक्ति विषय है, शिव भोक्ता है, शक्ति भोग्या है, शिव दृष्टा है, शक्ति दृष्टव्य है। शिव आस्वादक है शक्ति आस्वाद्य है, शिव मंता है और शक्ति मंतव्य है।[4] चन्द्र-चन्द्रिका के तुल्य शिव-शक्ति भी अभिन्न है।

परब्रह्म स्थित विमर्श शक्ति ही सूक्ष्म चिदचिदात्मिका शक्ति कही जाती है। चरचरात्मक विमर्श शक्ति सत्व, ही जड़ माया शक्ति कहलाती है। सूर्य किरण जैसे सूर्यकांत मणि का सम्पर्क प्राप्त करके अग्नि का रूप धारण करके रुई में अग्नि लगाकर अग्नि रूप हो जाती है, वैसे ही शिव विमर्श जड़ माया शक्ति में प्रतिस्फुरण गति से प्रवेश करके सुख, दुख तथा मोक्ष उत्पन्न करने वाली त्रिगुणात्मिका 'प्रकृति' का अभिधान-धारण कर लेती है। इस प्रकृति को वीर शैवाचार्य चित्त कहते हैं। चित्त शक्ति विशिष्ट शिव प्रकाश रूप शिवांश ही जीव कहलाता है।

१– मालिनी विजयोत्तर तंत्र - ३।५

२ 'न शिव शक्ति रहतो न शक्तिर्व्यतिरेकणी।' —शिवदृष्टि - सोमानन्द, पृष्ठ - ५४।३।९३

३– ध्वन्यालोक — जयरथकृत टीका, - पृष्ठ- ११०।११

४– शिव पुराण -- वायवीय संहिता - उत्तर भाग - ५।५६-६१

वीर शैवमत में शक्ति को छै. रूपों में वर्णित किया गया है--

(१) चित् शक्ति, (२) पराशक्ति, (३) आदि शक्ति, (४) इच्छा शक्ति, (५) ज्ञान शक्ति तथा (६) क्रिया शक्ति। छै. प्रकार की शक्तियों से संचालित होकर शिवतत्व जिन ५ लिंगों के रूप में आविर्भूत होता है वे निम्न प्रकार से छैः रूपों को उत्पन्न करते हैं।

१- चित् शक्ति

जब शिव तत्व चित् शक्ति द्वारा संचालित होता है तब महा लिंग का उद्भव होता है। यह जन्म और मृत्यु से परे, पूर्ण, निर्मल, परात्पर, सूक्ष्म अक्षय, अगात्र एवं भक्ति तथा अनुराग द्वारा ग्राह्य एवं चैतन्य है।

२- पराशक्ति

जब शिव तत्व पराशक्ति द्वारा संचालित होता है तब सादाख्य तत्व की उत्पत्ति होती है, जो प्रसाद लिंग के नाम से अभिहित होता है। यह लघु, नित्य, अविभाज्य, इन्द्रियागोचर, धीगम्य तथा विकसित होने वाला मूल तत्व है।

३- आदिशक्ति

जब शिव तत्व आदि शक्ति से संचालित होता है तब चरलिंग की उत्पत्ति होती है। यह अनन्त, आभ्यंतर एवं बाह्य जगत में व्याप्त है, तेज से परिपूर्ण है, पुरुष है और मनोग्राह्य भी।

४- इच्छा शक्ति

जब शिव तत्व इच्छा शक्ति द्वारा संचालित होता है तब शिवलिंग उत्पन्न करता है। वह एकमुख, अहंकार युक्त, ज्ञानवान्, कलावान् रिव्याम् तथा शांत अनन्त तत्व है।

५- ज्ञान शक्ति

ज्ञान शक्ति तत्व जब शिव से संचालित होता है तो गुरु लिंग को उत्पन्न करता है। यह तेजोमय है, आनन्द का असीम सागर है तथा यह मानव बुद्धि में निवास करता है।

६ क्रिया शक्ति

शिव तत्व क्रिया शक्ति से संचालित होकर आचार लिंग उत्पन्न करता है। यह क्रिया के रूप में समस्त वस्तुओं के अस्तित्व का आधार है। मनोग्राह्य है तथा सन्यास की ओर उनमुख करने वाला है।

मूल सत्ता (शिव तत्व) अपनी अंतरंग शक्ति द्वारा ईश्वर व जीवात्मा मे विभक्त हो जाती है। ईश्वर के ६ रूप ईश्वर को देखने के विभिन्न मार्ग हैं।

प्रथम– अनन्त सत्ता जो स्वतन्त्र है।
द्वितीय– सृष्टि कर्ता के रूप में कल्पना की जाना।
तृतीय– भौतिक जगत से भिन्न रूप में कल्पना की जाना।
चतुर्थ– स्वरूप शरीर रूप में प्रचलित है।
पचम– मानव जाति के उपदेशक का रूप प्रचलित है।
छठवां - समृद्धर्ता के रूप में प्रचलित है।

४– जीव

विशिष्ट शिव प्रकाश रूप शिवांश जीव कहलाता है।[1] वीर शैव मत के अनुसार शिव और जीव में पारमार्थिक भेदाभेद बताया गया अर्थात वह भेद युक्त है भी और नहीं भी। शिव से आविर्भूत शिवांश रूप जीवों में तथा शिव में आत्यांतिक न तो भेद है और न अभेद ही है। इस भेदाभेद दृष्टि के कारण इसे द्वैताद्वैत मत भी कहते हैं।

शिव और शिवांश रूप जीवों में अभेद मानते हैं तो शिव की तरह जीवों में भी सर्वत्मत्व, सवर्कतृत्व आदि गुण भी मानने पड़ेंगे। दोनो में भेद कहे तो जीवों में सकल वस्तु ज्ञान का अभाव आ जाता है। परन्तु ऐसा है नहीं अतः वीर शैवाचार्यों ने शिव तथा जीव में पारमार्थिक भेदाभेद को स्वीकार किया है।

१– अनाद्यविद्यासम्बन्धात् तदंशो जीवनायकः।

–रेणुकाचार्य।

भक्ति जीवात्माओं की अपनी विशेषता है। जीवों की प्रकृति ईश्वरोन्मुखी होने के कारण इसकी तीन अवस्थायें देखने को मिलती हैं। इन अवस्थाओं के अनुकूल उसके तीन रूप हो जाते हैं--

१-- योगांग

योगांग द्वारा जीव शिव का सान्निध्य प्राप्त करता है।

२-- भोगांग

भोगांग द्वारा वह शिव से भोग करता है।

३-- त्यागांग

त्यागांग द्वारा वह क्षणभंगुर या भ्रमरूप जगत का परित्याग करता है।

योगांग का सम्बन्ध कारण में लय हो जाने के कारण सुषुप्ति स्थिति से है। भोगांग का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर एवं स्वप्न से है तथा त्यागांग का सम्बन्ध स्थूल शरीर तथा जाग्रतावस्था से है। इनमें से प्रत्येक के दो-दो भेद किए गए हैं। योगांग-- (१) ऐक्य तथा (२) शरण।

१-- ऐक्य

समस्त जगत के मिथ्यातत्व का बोध हो जाने पर शिव के आनन्दों में सम्मिलित होने को ऐक्य कहते हैं। इसे समरसा भक्ति भी कहते हैं, जिसमें ईश्वर एवं आत्मा आनन्दानुभूति में एक हो जाते हैं।

२-- शरण

भक्ति के अन्तर्गत पुरुष अपने अन्दर तथा सर्वत्र लिंग या ईश्वर दर्शन करता है। यह स्वयं के लिए आनन्द की स्थिति है। शरण भक्ति दो प्रकार की होती है। (१) प्राणलिंगी एवं (२) प्रसादी।

१-- प्राणलिंगी

भक्ति के अन्तर्गत जीवन के प्रति समस्त अनुरक्तियों का परित्याग, अहंकार का त्याग तथा लिंग या शिव में पूर्ण रूपेण मन से अनुरक्त होना पड़ता है।

२ - प्रसादी

भक्ति में जब व्यक्ति लिंग या महेश्वर के लिए समस्त पदार्थों का परित्याग कर देता है। उसे तब शिवतत्व का प्रसाद प्राप्त हो जाता है।

त्यागांग के भी दो भेद है— (१) माहेश्वर तथा (२) भक्त।

(१) माहेश्वर वह है जिसे ईश्वर की सत्ता मे पूर्ण एवं दृढ विश्वास है और व्रतों एवं नियमों की चर्या और सत्य, नैतिकता, पवित्रता आदि का अनुसरण करता है तथा लिंग या शिव की एकता में दृढ़ विश्वास रखने के कारण कठोर व्रत को धारण करता है।

(२) भक्त— जो अपना मन सब आकृष्ट करने वाले पदार्थों से विमुख कर तथा भक्ति एवं विधियों का आचरण करता हुआ जगत के प्रति उदासीन है, वह भक्त है।[1]

वीर शैवमत मे जीवात्मा की प्रगति की उत्तरोत्तर तीन अवस्थायें बतलाई गई है। संसार के प्रति उदासीनता प्रथम सोपान है। उसके उपरान्त विपर्यस्त— — — —क्रम से मध्यवर्ती अवस्थाओं से होते हुए आत्मा सामरस्य तक पहुंचती है, जो उच्चतम अवस्था है। इस प्रकार यहाँ पर निर्दिष्ट लक्ष्य परमात्मा और जीवात्मा का पूर्ण अभेद हो जाना अपनेपन का ज्ञान न रखते हुए मात्र आत्मा बन जाना नहीं है। इससे स्पष्ट है वीर शैव सिद्धांत शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन के समान न हो कर रामानुजचार्य के विशिष्टद्वैत के अत्यन्त निकट हैं। अतएव लिंगायत साम्प्रदाय विशिष्टाद्वैत का पोषक है। यह भी अवलोक्य है कि इस संप्रदाय ने भक्ति तथा सामरस्थ— प्राप्ति पर्यन्त नैतिक एवं आध्यात्मिक चर्यों को मुक्ति का मार्ग बतलाया है। इस विषय में भी यह सम्प्रदाय रामानुज से काफी मिलता है।[2]

५— जगत—

वीर शैवों के मतानुसार यह चराचरात्मक सरल जगत शक्ति विशिष्ट पर शिव (ब्रह्म) से समुत्पन्न है। इससे यह सत्य है। श्री रेणुकाचार्य भी इसे सत्य मानते हैं। उन्होंने अगस्त्य मुनि को उपदेश देते हुए जगत की सत्यता।

१— मयिदेव-अनुभवसूत्र (शोलापुर, १९०९) के विवरण का सारांश।

२— वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत— डॉ० आर० जी भंडारकर, पृष्ठ- १५६

पर प्रकाश डाला है तथा उसकी नित्यता का प्रतिपादन भी किया है[1]

जगत के प्रसार के संबंध में भी रेणुकाचार्य ने अपने विचार भी प्रस्तुत किये हैं।[2]

६- सृष्टि :-

सृष्टि-उत्पत्ति के सम्बन्ध में वीर शैवों ने वेदान्त संप्रदायों के प्रचलित मतों में परिणामवाद को प्रमुखता प्रदान की। परिणामवाद के अनुसार ब्रह्म और जगत के मध्य दूध तथा दही जैसा सम्बन्ध है। जैसे दूध में विकार हो जाने से उस विकार के परिणाम स्वरूप दही नामक अन्य पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। जिसकी सत्ता दूध से पूर्णतः पृथक् और भिन्न है। उसी प्रकार परब्रह्म (शिव) की शक्तियों द्वारा जगत की सृष्टि होती है, वह पृथक और भिन्न होता है। इस कारण उसे सत्य माना जाता है।

सृष्टि परिणाम जन्य है- इससे यह परिणामवाद के अनुसार है। वीर शैव सिद्धान्त के अनुसार जगत की उत्पत्ति और उसका नाश वस्तुतः शक्ति का

१- यस्मादेतत् समुत्पन्नं महादेवाच्चराचरम्।
तस्मादेतन्न भिद्येत तथा कुम्भादिकं मृदः॥
शिव तत्वात् समुत्पन्नं जगदस्मान्न भिद्यते।
फेनोर्मिबुद्बुदाकारो यथा सिन्धोर्न भिद्यते॥

● ● ●

यथा पुष्पपलाशादिवृक्षिरूपान्न भिद्यते।
तथा शिवात् पराकाशाद् जगतो नास्ति भिन्नता।

-(सिद्धान्त शिखामणि)

२- आत्म शक्ति विकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः।
कुटी भावाद्यथा भाति पटः स्वस्य प्रसारणात्।

—रेणुकाचार्य।

विकास और संकोच है। [1]

वीर शैव मत जगत और शिव (पर ब्रह्म) की स्थिति पुष्प फलादि एवं वृक्ष के संबंध की भांति मानता है अर्थात ब्रह्म के ही साथ जगत को भी नित्य और सत्य बतलाता है, जबकि शंकर का अद्वैत वाद- 'ब्रह्म ,सत्यं जगन्मिथ्या' का उपदेश देता है। परशिव अपने में नित्य संबंध से रहने वाले जगत का विकास एवं संकोच करता हैं। दूसरी तरफ वीर शैव मत जीव शिवांश कहता है, वह जीवों के पारमार्थिक भेदाभेद का प्रतिपादन करता है। इस दृष्टि से यह द्वैताद्वैत' वाद का समर्थक कहा जा सकता।

शिवतत्व के विवेचन के सन्दर्भ स्पष्ट किया जा चुका है कि शिव ब्रह्म स्थल में चराचर जगत की उत्पत्ति एवं लय को प्राप्त करता है यद्यपि विभिन्न अंगों एवं लिंगों की सत्ता दिखाई देती है, तथापि अंत में शुद्धात्मा अंग नामक जीव लिंग नामक शिव में सामरस्य प्राप्त करता है। इस दृष्टि से यह शक्ति विशिष्टाद्वैत मत ठहरता है।

परमात्मा एवं जीवात्मा में पूर्ण अभेद हो जाना, शंकराचार्य के अद्वैतवाद की भांति मान् आत्मा बन जाना जीवात्मा का लक्ष्य नहीं है । शिवतत्व

१- 'जैसे कछुआ एक समय में अपने पैरों को बाहर निकाल कर पानी में चलता रहता है, तथा दूसरे समय में उन पैरों को अपने भीतर करके चुप-चाप बैठा रहता है, उसी प्रकार पर शिव अपने में नित्य सम्बन्ध से रहने वाले जगत का एक समय में विकास करता है और दूसरे समय में संकोच करता है यदि कोई कछुए के पैरों को बाहर निकालने को कछुए के पैरों की उत्पत्ति कहे तथा उन्हें भीतर करने को पैरों का नाश कहे, तो सर्वथा हास्यास्पद ही प्रतीत होगा इसी प्रकार नित्य जगत के संदर्भ में उत्पत्ति और नाश शब्दों का प्रयोग सर्वथा असंगत एवं हास्यास्पद ही माना जाएगा विकास और संकोच शब्द अधिक उपयुक्त है। अतः वीरशैव सिद्धान्तानुसार जगत नित्य और सत्य ठहरता है। —शैव एवं वैष्णव धर्म एवं दर्शन,

—डॉ० रा०प्र० चतुर्वेदी, पृष्ठ- ६९

अपनी अ तर्वतिना शक्ति द्वारा लिंग या ईश्वर तथा अ ग या जीवा मा म विभक्त
हुआ और अन्य शक्तियों के प्रभाव में आकर उसके द्वारा जगत का रचयिता बन
गया। इससे स्पष्ट होता है कि वीर शैव सिद्धांत के अनुसार सृष्टि के बीज स्वय
ईश्वर में उसकी वास्तविकता शक्ति के रूप में विद्यमान है या रहते है। यह बात
बिल्कुल रामानुज के विशिष्टाद्वैत के अनुसार है। रामानुज के अनुसार ईश्वर
आत्मा तथा बाह्य जगत् के मूलतत्वों से विशिष्ट है, जो वास्तविक हैं और
बाद में विकसित होते हैं लेकिन वीर शैव के अनुसार ईश्वर में एक शक्ति
निहित है और उसी से सृष्टि होती है। इस प्रकार, रामानुज और वीर शैव
के सिद्धांतों में एक बहुत ही सूक्ष्म अन्तर दिखाई पड़ता है। रामानुज के अनुसार
ईश्वर मूल तत्व से विशिष्ट है और वीर शैवमत में ईश्वर उस शक्ति से विशिष्ट
है। अतएव वीर शैव सिद्धान्त रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त तो
नहीं कहा जा सकता है, पर उसका पोषक अवश्य माना जा सकता है। वीर शैव
सम्प्रदाय में भक्ति तथा सामरस्य प्राप्ति पर्यन्त नैतिक एवं आध्यात्मिकचर्या को
मुक्ति का मार्ग बतलाया गया है। इस दृष्टि से भी वीर शैव सिद्धांत
रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत से काफी गोचर होता है। अतः यह
सिद्धान्त 'भेदाभेद विशिष्टाद्वैत' या शक्ति-विशिष्टाद्वैत कहलाता है।

४— कश्मीरी शैव दर्शन (प्रत्यभिज्ञा दर्शन)

कश्मीरी शैव मत में प्रतिपादित सिद्धान्तों का विवेचन प्रत्यभिज्ञा दर्शन
के नाम से प्रचलित है। कश्मीर प्रदेश में विकसित इस दार्शनिक विचार धारा
को अन्य कई नामों से भी अभिहित किया गया है है जिनमें प्रमुख स्पंद दर्शन,
त्रिक् दर्शन [1] है। कहीं-कहीं इसे 'ईश्वराद्वयवाद' तथा 'अभेदावाद' भी कहा
गया है।

१— त्रिक् दर्शन या षडर्ध दर्शन नाम पड़ने के दो कारण है।—
(१) इसमें तमिल शैव दर्शन की भाँति पति, पशु और पाश—इन तीन
पदार्थों का विवेचन हुआ है।
(२) अभिनवगुप्त द्वारा लिखित तंत्रालोक के टीकाकार श्री जयरथ के मत
से सिद्धान्त नामक मालिकन्यारूप खण्डत्रयात्मकत्वात त्रिविधर्म के
आधार सिद्धान्ततन्त्र, नामक तन्त्र तथा मालिनी तन्त्र इन तीनों तंत्रों
को ही इस दर्शन में प्रधानता दी गई है और इनके सार को लेकर ही
इसको विकसित किया गया है। अतः तीन तन्त्रों के आधार पर
विकसित होने के कारण इसे त्रिक् षडर्ध दर्शन कहते है।
शैव मे० और दर्शन, रा० प्र० चतुर्वेदी—
पृ०- ७७

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र तथा स्पद शास्त्र के आधार पर ही इस दर्शन का विकास हुआ है अतः इसे प्रत्यभिज्ञा दर्शन कहते है और यही नाम सर्वाधिक प्रचलित है।

इस दर्शन का विकास जिन ७७ शिव–सूत्रों के आधार पर हुआ है, वे कश्मीर में महादेव गिरि पर अंकित थे। कहा जाता है कि स्वयं शिव जी ने वसुगुप्त को स्वप्न में उन सूत्रों के विषय में निर्देश दिया और वहाँ से उन सूत्रों का उद्धार करके वसुगुप्त ने अपने 'ग्रन्थ स्पंद कारिका' में इन सूत्रों का संग्रह किया।[1] उसके दो शिष्य कल्लट और सोमानन्द ने क्रमशः स्पंद शास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र का प्रवर्तन करने का श्रेय प्राप्त किता। इसके पश्चात सोमानन्द के शिष्य उदयाकर ने प्रत्यभिज्ञा सूत्रों की रचना और आचार्य अभिनव गुप्त ने ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी नामक टीका तथा 'तंत्रसार,' 'तंत्रालोक,' 'परमार्थ सार' आदि अन्य कई ग्रन्थों की रचना की।

इस प्रकार प्रत्यभिज्ञान दर्शन दो भागों में विभाजित हो गया—

(१) स्पंद मत, (२) प्रत्यभिज्ञा मत।

इन दोनों मतों में सामान्यतः अधिक अन्तर प्रतीत नहीं होता है। स्पंदमत के अनुसार जब ध्यान के द्वारा मन के समस्त मतों का निवारण हो जाता है तब शिव साक्षात्कार की स्थिति उत्पन्न होती है। प्रत्यभिज्ञा मत के अनुसार जीव को जब यह ज्ञान हो जाता है कि 'मैं ही शिव हूं' तब शिव साक्षात्कार की स्थिति आती है।

डा० भंडारकर इन दोनों मतो में कोई सैद्धान्तिक भेद नहीं मानते हैं। इन दोनों शास्त्रों या दर्शनों में कोई सैद्धान्तिक भेद नहीं है। केवल इतना ही है कि स्पंदमत वाले ध्यान के द्वारा समस्त मलों के दूर होने पर भैरव (ध्यान के द्वारा समस्त) स्थिति या शैव– साक्षात्कार की स्थिति का उत्पन्न होना मानते हैं, परन्तु प्रत्यभिज्ञा मत वाले यह मानते हैं जीव को यह प्रत्यभिज्ञान हो।

१— शिव सूत्र विमर्शिनी, पृष्ठ सख्या-२, ३

हो जाता है कि मै भी शिव हूँ इसी समय उक्त स्थिति उत्पन्न होती है।[1] माधव के अनुसार ये दोनों मत प्राणयाम इत्यादि तथा आभ्यन्तर और बाह्य

१– 'एक उपनिषद् वचन है कि जब वह प्रकाशित होता है तब सभी वस्तुए प्रकाशित होती है एवं उसके प्रकाश द्वारा प्रत्येक वस्तु प्रत्यक्ष हो जाती है। (कठ० उ०– ५,१५, वि० उ० ६, १४, मु० उ०–२, २, १०) । इस प्रकार हमारी ज्ञान शक्ति वही है जो ईश्वर को है तथा इससे बाह्य प्रत्येक वस्तु उसकी प्रकाशक शक्ति द्वारा ज्ञेय बन जाती है। चूँकि हम ज्ञान सम्पन्न एवं क्रियाशील हैं, अतः हम ईश्वर के अंश है। परन्तु इस अंश को सीमा में बाँधने के लिए कोई तर्क नही है। अतएव यह समझना चाहिए कि हम साक्षात् ईश्वर हैं । परन्तु वर्तमान स्थिति में हमें ईश्वर के लक्षण, ज्ञान एवं उत्कर्ष का बोध नहीं होता और इस कारण हम सब बात कीप्रत्यभिज्ञा नहीं कर पाते कि हम ईश्वर है, यद्यपि हम वस्तुतः ईश्वर हैं। जैसे कोई कामिनी किसी युवक के गुणों के विषय में सुनकर प्रेम से पीड़ित हो और कभी उस युवक को देखे तो न पहचाहने के कारण उसे सामान्य व्यक्ति की तरह देखती है और आनन्दित नहीं होती, परन्तु जब उसे बतलाया जाता है कि यहीं वह व्यक्ति है जिसके गुणों ने उसे इतना मोहित कर रखा है, तब वह आनन्दित हो उठती है एवं इसे आत्मसमर्पण कर देती है। (यहीं नहीं करता, यद्यपि वह स्वयं ईश्वर है) यही बात जीवात्मा के बारे में भी है। जब ईश्वर के स्वरूपगत विशुद्ध आनन्द का अनुभव नहीं करता, यद्यपि वह स्वयं ईश्वर है क्योंकि उसे इस बात का ज्ञान नहीं है कि वे उच्च गुण, जो ईश्वर में होते हैं, उसमें भी विद्यमान हैं। परन्तु जब उसका गुरू उसे यह विश्वास दिलाता है कि वह उन गुणों से युक्त है, अर्थात जब गुरू के उपदेशों से अपने ईश्वर में की प्रत्यभिज्ञ करने में सक्षम हो जाता है, तब प्रशांत आनन्द उसके अन्तरउचित होता है। यही ईश्वर के साथ अभेद की अनुभूति का एक मात्र मार्ग है।

आर० जी० भंडारकर– वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत

पृष्ठ- १४९।१५०

नियमों क विल ाण माग का विधान नहीं करते जिन्हें अन्य मत ने आवश्यक माना है। स्पष्ट रूप से ये दोनों मत, उस प्राचीन पारम्परिक शैव- धर्म से अलग हो गए है, जिसका विकास शनैः शनैः कापालिक या कालामुख संप्रदायों के रूप मे हुआ। अतः किसी भी अर्थ में उनके लिए पाशुपत या लकुट विशेषण लागू नहीं किया जा सकता। अतएव वसुगुप्त को एक अभिनव शास्त्र के दर्शन होने की कल्पना की गई, यद्यपि अधिक गम्भीर शैव संप्रदाय के कतिपय सिद्धान्तों का विवेचन स्पन्द शास्त्र में निहित था।[1]

प्रत्यभिज्ञा दर्शन विवेचन

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अन्तर्गत परमतत्व शिव, शक्ति, जगत सृष्टि, काम कला, माया आत्मा, जीव, मोक्ष, के साधन, तीन पदार्थ, छत्तीस तत्व, शिव की शक्ति का स्वरुप एवं शक्ति के विभिन्न रूपों की विवेचना विस्तृत रूप से की गई है।

१– परम तत्व-शिव: :—

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शिव को मूल तत्व माना गया है। परम शिव को विश्वोत्तीर्ण, विश्वात्मक, परमानन्दमय, प्रकाशक धन, सर्वज्ञ, सर्व कर्ता, व्यापक, परमेश्वर आदि कहकर इस अखिल ब्रह्मा में अभेद रूप से स्फुरित होता हुआ बतलाया गया है और कहा गया है कि उस परम शिव के अतिरिक्त न कुछ ग्राह्य है और न कोई ग्राहक है, अपितु वही परम शिव भट्टारक नाना वैचित्र्यों से परिपूर्ण इस सृष्टि में प्रगट हो रहा है।[2]

१– वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत- डा० आर० जी भंडारकर- पृष्ठ-१५०
(माहेश्वरी प्रसाद द्वारा अनुवादित- प्रथम संस्करण)।

२– (क) श्रीमत्परमशिवस्य पुनः विश्वोत्तीर्ण– विश्वात्मक– परमानन्दमद
प्रकाशक धनस्थ .... अखिलम अभेदेनैव स्फुरति,
न तु वस्तुतः किंचित ग्राह्यं ग्राह्यकं वा, अपितु
श्री परमशिव भट्टारक एवं इत्यं नाना वै चित्र्य सहस्त्रैः
स्फुरति— प्रत्यभिज्ञा हृदयं, पृष्ठ- ८

(ख) सर्वज्ञः सर्वकर्ता च व्यापकः परमेश्वरः। विज्ञान भैरव पृष्ठ- १०९

(ग) चिदेव भगवती स्वच्छ स्वतं त्ररुपा तत्तदनन्त जगदात्मना स्फुरति
प्र० हृ०, पृ०३

(घ) आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन् निवृत चिद् विभुः।
अनिरुद्धेच्छाप्रसर प्रसरद् हृक्—क्रिया शिवः।—(शिव दृष्टि १।२)

अत पशु और पाश नामक पदार्थ की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है केवल परम शिव परम तत्व के रूप में सर्वोपरि है। शिव प्रमाता (ज्ञाता) भी है और प्रमेय (ज्ञेय) है। अनुभवकर्ता भी है और अनुभूत पदार्थ भी है।[१] चूकि चैतन्य जिसके ऊपर समस्त उत्पन्न जगत स्थिर है और जहां से ये प्रादुर्भूत होता है वह अपने स्वरूप में स्वतंत्र है इसलिए इसकी गति सर्वत्र अबाधित है। जाग्रत तथा स्वप्न आदि भिन्न-भिन्न अवस्थाओं अपने को उन्हीं के अन्दर मिलाता हुआ जब गति करता है तो अपनी यर्थाथ स्वभाव से च्युत नहीं होती अर्थात ज्ञाता ही रहता है।[२]

ये परम शिव परम-आत्मा समाहित है। यह परम आत्मा समाहित रूप ही उनका निर्गुण, निराकार, निष्क्रिय, निष्कल रुप है। यह परम शिव परम अद्वय तत्व, यामल तत्व है।[३]

परम तत्व—परम शिव—परम शिव परमतत्व है जो शिव तथा शक्ति का, कामेश्वर और कामेश्वरी का सामरस्य रूप है।

परमशिव ही इस विश्व के उन्मीलनकर्त्ता है। इसमें न तो किसी उपादान की आवश्यकता पड़ती है और न किसी आधार को परम स्वातन्त्र्य शक्ति सम्पन्न परमेश्वर स्वेच्छ या स्वभिति में, अपने ही आधार में, जगत का उन्मीलन करते हैं।[४]

आचार्य वसुगुप्त परमशिव को विलक्षण कलाकार मानते है—

निरुपादान संभारमभित्तावेव तन्वते।
जगच्चित्र नमस्तस्मै कलानाथाय शूलिने॥[५]

१— स्पंदकारिका, पृष्ठ—२९
२— स्पंदकारिका, पृष्ठ— २·४
३— श्री जयरथ कृत टीका- तंत्रालोक १।१
४— स्वेच्छया स्वभित्तो विश्वमुन्मीलयति। — प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र—२
५— 'जो बिना किसी भित्ति (आधार) के (शून्य में) बिना उपकरण समूह का सहारा लिए, इस विचित्र संसार की रचना करता है, कलाओं के स्वामी उस शूलधारी को प्रणाम करता हूं।

इस परम शिव की लीला विचित्र है। जगत चित्र के लिए न तो कोई आधार अपेक्षित है और न उन्हें किसी सामग्री की अपेक्षा। बिना सहायता के वह स्वयं अपनी इच्छा शक्ति से अपने आप में जगत का आविर्भाव करते हैं। अतः उन्हें कलानाथ या कलाश्लाघ्य विशेषणों से अलङ्कृत करना सर्वथा उपयुक्त है।

शैवागमों में शिव को पंचकृत्यकारी माना गया है।[1] इन पंचकृत्यों को क्रमशः सृष्टि, स्थिति, प्रलय, तिरोधान और अनुग्रह कहा गया है।[2] किन्तु शिव की सृष्टता, स्थापकता, संहर्तृता, विलय कारिता तथा अनुग्रहीतृता सभी कादाचित्क है।[3] अत शिव की सृष्टता, स्थापकता, संहर्तृता आदि उनका तटस्थ लक्षण हैं।

परम शिव पूर्णकाम है। वे सृष्टि के कर्त्ता जगत एवं सृष्टि की रचना करने का क्या प्रयोजन है? इसका उत्तर शैव दार्शनिकों ने दो प्रकार से दिया है। पहला शिव क्रीड़ा या लीला करने के लिए जगत की रचना करते हैं।[4]

१– तथापि तद्वत् पचकृत्यानि करोति। -प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, सूत्र १०

२– सर्व स्थितिप्रलयानुग्रहोतिरोधान लक्षण पंचप्रकारं कृत्यम्।
शिव दृष्टि पृ० १५

३– विश्वात्मसात्कार रूप समावेशभूः कादाचित्की, कथम् उपादेया
इयं स्वात् इति, यतो देहाद्युन्मज्जन निमज्ज नवशेने इदम्
अस्याः कादाचित्कत्वम् इव आभाति। वस्तुतस्तु चितिस्वातंत्र्
-यावभासित देहाद्युन्मज्जनात् एवं कदाचित्क त्वम्।
-प्रत्याभिज्ञाहृदयम्, पृष्ठ ३६

४– (क) क्रीड्या दुःखवेद्यानि कर्मकारीणि तत्फलैः।
समंत्स्यमानानि तथा नरकार्णव गह्वरे॥
निवासीनि शरीराणि गृह्णति परमेश्वरः।
-शिवदृष्टि १।३६,३७

(ख) सा एवं लक्षणा पारमेश्वरी शक्तिः स्वलीलोल्लासि तस्य-
जगतो वस्थाद्धय हेतुत्वात्।
-स्पंदकारिका पृष्ठ - ६।

दूसरा व शकर है, अतएव शं अथवा कल्याण करने के लिए अथवा जीवों पर अनुग्रह करने के लिए वे निराकार एवं अरूप होकर भी नाना आकारों एवं नाना रूपों को धारण करते हैं।[1]

परम शिव शैव दर्शनों में निराकार एवं साकार दोनों रूपों में चित्रित किए गए हैं। शैव दर्शनों ने दोनों रूपों को पारमार्थिक सत्ता के रूप में मान्यता प्रदान की है।[2]

(क) शिव का निराकार रूप :–

शैव दर्शन में शिव को अनादि, अनन्त, चिद्रूप, अक्षर, निर्विकार, शब्द रूप, अरूप, देशकालादि शून्य, विज्ञान रूप, अवाच्य, अलक्षित आदि कह कर शिवत्व की अनिर्वचनीयता का निरूपण मिलता है।[3]

१– (क) तं शंकर - श्रेयसः कर्तारं स्तुमः प्रशंसामः।

–स्पंदकारिका, पृष्ठ ३

(ख) ध्यान पूजाद्यसम्भवेन भक्तानुग्रहवणाय तत्दाकार ग्रहण अविश्नेघात्।

–सर्वदर्शन - संग्रह, पृष्ठ १५८

२– प्रसाद-दर्शन

–डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - पृष्ठ ५८

३ - यदनादि अनन्तंच परंब्रह्म चिद्रूपं तदक्षरं निर्विकारं शब्दरूपम्।

–शिव दृष्टि, पृष्ठ ३१

(क) देशकालादि शून्यकम्।

शिव दृष्टि - वही २।४

(ख) चिद्रूपत्वम रूपकम्।

- वही - २।३

(ग) आस्ते विज्ञानरूपत्वे।

- वही - २।६

(घ) अवाच्यत्वेन भवतां·········अलक्षितस्वरूपाया। - वही - २।३१

(ख) शिव का साकार रूप :-

शैव दर्शन में अनादि, अनन्त अमूर्त, अनवच्छिन्न, स्वतन्त्र एवं चैतन्यात्मा शिव को मायोत्तीर्ण एवं विश्वोत्तीर्ण होकर भी महामाया के अधिष्ठान भूत ब्रह्मा, विष्णु आदि के ऐश्वर्य से युक्त तथा विश्वमय कहा गया है।[1] वे अपनी इच्छा से कभी-कभी ज्ञान शक्ति द्वारा विविध रूपों को धारण करते हैं।[2] वे इस जगत में क्रीड़ा करने के लिए अपनी माया से छत्तीस तत्वों के रूपों को ग्रहण करते हैं।[3] वे ही देवता, मनुष्य, तिर्यक योनि आदि का सृजन करके नाना शरीरों, नाना आकारों एवं विविध भुवनों का रूप ग्रहण करते हैं।[4] इस जगत के सम्पूर्ण पदार्थ तथा नाना रूप एक शिव के ही साकार रूप हैं।[5] शिव ही एक जगत के विविध रूपों एवं विविध आकारों में स्थिति हैं।[6] वे ही चित्‌शक्ति रूप शिव

१- मायोत्तीर्ण अपि महामायाधिकृता विष्णुविरंचाद्या यदीयैश्वर्य

२- लेशेनेश्वरी भूताः स भगवान न वच्छिन्न प्रकाशनंद-स्वातन्त्र्य परमार्थी महेश्वरः।
--स० सं० १६८

३- विभर्ति रूपमिच्छाः कदाचिज्ज्ञानशक्तिः।
--शिव दृष्टि १,३०

४- आत्म प्रच्छादन क्रीड़ां कुर्वतो वा कथं च न।
मायारूपमितीत्यादि षट् त्रिंशतत्व रूपताम्॥
--वही, १।३२

५- तथा नाना शरीराणि भुवनानि तथा तथा।
विसृज्य रूपं गृह्णाति प्रोत्कृष्टाधभमध्ययम्॥
--वही, १।३४

६- तद्‌वत्सर्व पदार्थानां जगद्येवये स्थितः शिवः।
वही, ४।६४

७- एको पि तत्र वेरूपो वहवोऽप्यैकरूपाणिः।
वही, ६।११९

स्वतन्त्र होकर भी अनन्त जगत के रूप मे प्रकट होते दिखाई दे रहे हैं क्योंकि परमशिव ही विश्व शरीर है।[1] वे ही जगत के नाना पदार्थों को रूप एवं आकार प्रदाता हैं तथा जगत के वे ही साकार विग्रह हैं।[2]

परम शिव के विराट रूप की झाँकी शैवागमों में स्थान-स्थान पर दिखलाई पड़ती हैं जो प्रत्यभिज्ञान दर्शन की एक अपनी विशेषता है।[3]

१– 'चिदेव भगवती स्वच्छ स्वतंरूपा तत्तदनन्त - जगदात्मना स्फुरित'
-प्रत्यभिज्ञा हृदयम्, पृष्ठ-३

२- एवं भगवान् विश्वशरीरः। -प्रत्यभिज्ञा हृदयम्, पृष्ठ-३

३– (क) श्री परम भट्टाकर एवं इत्यं नानावैचित्र्य सहस्त्रैः स्फुरित।
'प्रत्यभिज्ञा हृदयम्

(ख) तथा नाना शरीराणि भुवना नि तथा तथा।
विसृज्य रूपं गृहणाति प्रोत्कृष्टाधममध्यमम्॥
-शिव दृष्टि १।३४

(ग) का पाणिपादं क्व शिरो येवयं स्थितः शिवः
-शिव दृष्टि ४।६३-६४

(घ) यत्र यत्र तत्र तत्र सदयत्वं विश्वरूपता।
-शिव दृष्टि ४।२९

(ङ) तेन सं वित्तिमुकरे विश्वमात्मानम् पर्यंत्।
नाथस्य वदते पुण्य विमर्शा विश्वरूपताम्॥
-तंत्रालोक ३।४४

(च) सूर्यं एव हि सोमात्मा स च विश्व भयः स्थितः
-वही - ४।२४

(छ) निराकारे हि चिद्धाग्नि विश्वाकृतिमदे संति।
-वही - ४।१६९

(ज) सोमसूर्याग्नि भासात्म रूपं सम वतिष्ठते।
-वही - ५।२९

प्रत्यभिज्ञान दर्शन में जहां शिव को मूल तत्व माना है। वहाँ उसे आत्मा भी कहा गया है । शिव सूत्र विमर्शिनी, प्रत्यभिज्ञा हृदयम् मालिनी विजयोत्तर तंत्र तथा नेत्र तन्त्र आदि शैव ग्रन्थों में आत्मा को चैतन्य, परमानन्दमय परमेश्वर, परमशिव, सर्वज्ञ प्रभु परमधाम, परमापद, परमवीर्य, परमामृत, परमज्योति, चिति, विमर्शरूपा आदि कहा गया है । [1] स्पष्ट है कि आत्मा परमात्मा का अभेद होने के फल स्वरूप आत्मा परम तत्व अथवा परमशिव रूप ह । यह आत्मा अपनी इच्छा से ही शिव से लेकर धरती तक समस्त तत्वों के साथ स्फुरित होता है । [2] प्रत्यभिज्ञा तत्वों में चिति: 'स्वतंत्रंय विश्वसिद्ध' हेतु कहकर इस चिदात्मा को सर्वथा स्वतंत्र एवं विश्व की निरूपत्ति अथवा विश्व के प्रकाशन का कारण माना जाता है । इस विमर्श रूपिणी आत्मा के पंचकृत्य माने जाते है निरन्तर सृष्टि स्थिति संहार, विलय और अनुग्रह सारांश यह है कि आत्मा परमशिव है ।

१— [१] तन्त्रलोक भाग १, पृष्ठ ४९,
[२] शिवसूत्र विमर्शिनी पृष्ठ ४,
[३] प्रत्यभिज्ञा हृदयम्, पृष्ठ २,८
[४] मालिनी विजयोत्तर तंत्र, पृष्ठ० ३ तथा
[५] नेत्र तन्त्र भाग १, पृष्ठ ५४,–५५

२— आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन् निर्वृत चिद् विभुः
अनिरुद्धेच्छाप्रसर : प्रसरद् दृक्–क्रिया शिवः ।
–शिव दृष्टि १।२

२–शक्ति –

शिव (आत्मा) अपने जिस रूप से विश्व का उन्मूलन करती है, उसी को शक्ति कहा गया है। यह शिव अथवा आत्मा से पूर्ण अभिन्न है। परमेश्वर अनन्त शक्ति सम्पन्न है। शक्ति को तंत्र ग्रन्थों में शिव या ब्रह्म की छाया कहा गया है।[1] अपने निर्गुण रूप में वह चैतन्य रूपिणी, आनन्द रूपिणी, और ब्रह्मानंद प्रकाशिनी है और सगुण रूप में वह सर्वभूत प्रकाशिनी कहलाती है। शक्ति के सगुण रूप से ही सृष्टि का विकास हुआ है। शक्ति कुंडलिनी रूप में शिव के साथ उत्पन्न हो, सारे संसार में व्याप्त है।[2] वास्तव में शक्ति ही शिवास्य तत्व है। इस तत्व का पूर्ण उन्मेष परमशिव की पूर्णहिता अवस्था में होता है। श्रुतियों में सर्व प्रथम श्वेताश्वतर उपनिषद् के अन्तर्गत जहां शिव को सर्व प्रथम परब्रह्म के रूप में अंकित किया गया है, वहाँ प्रकृति का उल्लेख शिव की शक्ति रूप में किया गया है, क्योंकि वहाँ परमेश्वर को मायावी और उनकी शक्ति–स्वरूपा को प्रकृति की माया बतलाया गया है।[3]

परमेश्वर अनंत शक्ति सम्पन्न है। उसकी पांच शक्तियाँ विशेषरूप से विख्यात है—

१– चित् शक्ति, २–आनन्द शक्ति,

३— इच्छा शक्ति, ४–ज्ञानशक्ति, तथा–

५– क्रिया शक्ति।

१– कुंजिका तंत्र, प्रथम अध्याय

२– भास्कर, शिवसूत्र वार्तिक १।१७

३– मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।

— श्वे० उ० ४।१०

१—चित्त शक्ति:—

शैवागमों में चित् शक्ति को शिव की प्रकाशरूपता का द्योतक बतलाया गया है। इस शक्ति के द्वारा परमशिव प्रकाश्य वस्तु के अभाव में भी स्वतः प्रकाशित होते हैं। यह परमशिव की आत्मानुभूति की शक्ति मानी जाती है। इसी के द्वारा सजग होकर परमशिव अभिव्यक्त होते हुए लीलायें करते हैं। विश्व के रूप में इसी चित् शक्ति का अभिराम उन्मीलन होता है। शिव की इस प्रमुख चित् शक्ति के नोपनिषद् की हैमवती उमा या ब्रह्म की विद्याशक्ति ही है जो देवताओं की विलुप्त चेतना को जागृत करके ब्रह्म के स्वरूप को प्रकाशित करती है।[२]

२—आनन्द शक्ति:—

आनन्दशक्ति मूल रूप में सर्व प्रथम तैत्तिरीयोपनिषद में निरूपति की गई है, जहाँ, आनन्द से समस्त प्राणियों के उत्पन्न होने, इसी से जीवित रहने और अन्त में इसी के अन्तर्गत समा जाने का वर्णन किया गया है।[३] कश्मीर शैवदर्शन मे यह परमशिव को परमानन्द अनुभव करने की स्वतंत्र्य शक्ति मानी गई है।[४] इस शक्ति के द्वारा परमेश्वर निरतिशय आनन्द का, बाह्य वस्तु की बिना अपेक्षा किए, आनन्द का अनुभव करते रहते हैं। यह स्वातंत्र्यरूपा है।[५] आनन्द रूपा शक्ति ही सब सृष्टियों का मूल है। सृष्टि की रचना में निमित्त और उपादान कारण है। जीव विश्व सृष्टि के महानन्दमय में अनुचरण कर, अवस्थान कर, आनन्दमयी शक्ति में समाविष्ट होकर भैरव को प्राप्त करता ह।[६] वह आनन्दशक्ति परमशिव की स्वरूप शक्ति है। यही व्यापक रूप में ब्रह्माण्ड को व्याप्त किए हुये है। यह पराशक्ति शक्ति चक्र की जननी है।[७]

१— प्रकाशरूपतां चिच्छक्ति:। — तंत्रसार पृष्ठ ६

२— केनोपनिषद्, ३।१२

३— तैत्तिरीयोपनिषद, भृगुवल्ली, ५।१

४— आनन्द: स्वातंत्र्यम् स्वात्म विश्रांति स्वभावाह्लाद प्राधान्यात्।
— तंत्रसार, पृष्ठ ६-७

५— विज्ञान भैरव, पृष्ठ-१५५

६— मासा शक्ति: परा सूक्ष्मा व्यापिनी निर्मला शिवा
'शक्ति - चक्रस्य जननी परानन्दामृतात्मिका।'
— शिवसूत्र वार्तिक

यही माया के ऊपर महामाया है [1] इसी आनन्द शक्ति को वेम्भीकला का अभिधा दी जाती है।

इच्छा शक्ति:—

इच्छा शक्ति का मूल उद्गम उपनिषद् ग्रंथ है। प्रायः सभी उपनिषदों में उल्लेख है कि ब्रह्म ने इच्छा की कि मैं एक हूं और एक से बहुत हो जाऊं और अपनी इच्छा या कामना के अनुसार उसने सृष्टि की रचना कर दी तथा सृष्टि विकसित होती गई। [2] शैवागमों के आधार पर इच्छा वह शक्ति है जिसके द्वारा परम शिव के हृदय में सृष्टि कार्य करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। श्रुतियों में कहा गया है कि ब्रह्म के हृदय में जब सृष्टि-निर्माण की इच्छा हुई, तब वह सृष्टि कार्य में प्रवृत्त हुआ। अब प्रभु की इच्छा ही सृष्टि है। [4] शैव-दर्शन भी इस बात का समर्थक है कि शिव भट्टारक सृष्टि की विचित्र रचना करने के लिए तथा सृष्टि के अन्य नाना कार्यों में अपनी इच्छा से ही उन्मुख से होते हैं। [5]

ज्ञानशक्ति:—

ज्ञानशक्ति का सर्व प्रथम संकेत मुंडक-उपनिषद् में प्राप्त होता है। ब्रह्म के ज्ञानमय तप से ही नाना रूपात्मक जगत की उत्पत्ति हुई है। [6] यह ज्ञानमय तप ही ज्ञानशक्ति ही है, जो परमेश्वर की प्रमुख शक्ति के रूप में यहाँ अंकित की गई है और जिसे कश्मीरी शैव-दर्शन में महेश्वर की पांच शक्तियों में स्थान दिया गया है। [7]

---

१ - 'मायोपरि महामाया त्रिकोणानन्द रूपिणी' — कुंजिका तंत्र

२—छांदोग्योपनिषद्-६।३।६।२, ऐतेरेय उ० १।१।१), ३ ब्रह्मा ० उ० १।४।१७।

३—तच्चमत्कार इच्छा शक्तिः। — तंत्र सार, पृष्ठ ६

४—इच्छामात्र प्रभोः सृष्टिरिति सृष्टो विनिश्चिताः। मा० उ० आश्रम प्रकरण, ८

५—विचित्र रचना नाना कार्य सृष्टि प्रवर्तने।

भवत्युन्मुखिता चित्ता सेच्छायाः प्रथमा तुटिः। शिवदृष्टि १।८

६—यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।

तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपन्नं च जायते ॥ मुण्कोपनिषद १।१।९

७—शक्ति एण्ड डिवाइन पावर, - डॉ० एस० के० दास, पृष्ठ—५६

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में ज्ञान शक्ति परमेश्वर की सर्वज्ञता की शक्ति मानी गई है।[1] इस शक्ति के द्वारा शिव सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। अतः इस शक्ति के द्वारा परम शिव में वेद्योन्मुखता आती है इसी के द्वारा जगत के सम्पूर्ण पदार्थों का चित् सम्बन्ध इस पूर्ण चेतन के साथ स्थापित होता है।[2] ज्ञान शक्ति को आमर्षरूपा कहा गया है। आमर्ष का अर्थ है– वेद्य पदार्थ का साधारण ज्ञान– 'आमर्ष ईषत्तया वेद्योन्मुखता।'[3]

५– क्रिया शक्ति :–

उपनिषदों में क्रिया शक्ति के लिए 'सत्' शब्द का प्रयोग मिलता है। डा० सुधेन्दु कुमार दास के शब्दों में यह 'सत्' शब्द ही परमेश्वर की कृतित्व शक्ति अथवा क्रिया शक्ति या त्रिक्‌दर्शन की विमर्श शक्ति का वाचक है।[4] लेकिन 'सत्' की अपेक्षा 'तप' अधिक, क्रिया शक्ति के सन्निकट मालूम पड़ता है, क्योंकि "ज्ञानमय तप' शब्द में ज्ञान तो निसन्देह ज्ञान-शक्ति की ओर संकेत कर रहा है, किन्तु 'तप' शब्द प्रत्येक स्थान पर ब्रह्म के कर्तृत्व की ओर संकेत करता है।

प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म ने प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से तप किया और इसी तप के द्वारा ब्रह्म ने रयि और प्राण नामक जोड़े को उत्पन्न किया, जिससे आगामी सृष्टि हुई।[5] प्रत्यभिज्ञा दर्शन में भी क्रिया

---

१ आमर्शात्मकता ज्ञान शक्तिः। –तंत्रसार, पृष्ठ ६।

२– कश्मीरी शैविज्म, वोल्यूम –जिल्द १. पेज- ४५ (जे०सी० चटर्जी)।

३– तंत्रसार, पृष्ठ ६

४– शक्ति एण्ड डिवाइन पावर पृ० ५०-५१ (डा० एस० के० दास)

५– प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपो तप्यत, स तपस्तप्त्वा
स मिथुनामुत्पादयते रयिं च प्राणं चैत्यतौ मे
बहुधा प्रजाः करिष्यत इति॥

–प्रश्नोपनिषद् १।४

शक्ति को शिव की उत्पादन शक्ति माना गया है। इसलिए 'तप' क्रिया शक्ति का द्योतक जान पड़ता है। शैवागमों में यह परमशिव की वह शक्ति है जिसके द्वारा वे सर्वाकार योगित्व को प्राप्त होकर स्वेच्छानुसार विविध कार्य करते हैं।[1] इस प्रकार पाँच अतीन्द्रिय तत्व शिव की शक्ति के व्यक्त रूप है जो पाच प्रकार की शक्ति से उत्पन्न है।

शिव की उक्त पाँचों शक्तियां शिव से किसी भी स्थिति में पृथक् नही है। ये सभी शक्तियाँ शिव के साथ उसी प्रकार अभेद एवं अभिन्न रूप से विद्यमान रहती है, जिस प्रकार उष्णता अग्नि से, आलोक सूर्य से और समुद्र की लहरें समुद्र से एकाकार होकर विद्यमान रहती है। इन्हीं शक्तियों से युक्त शिव शक्तिमान कहलाते हैं और स्वेच्छा से आनन्द पूर्वक अनेक लीलाओं में लीन रहते हैं। शिव और शक्ति दोनों सदैव एक रूप रहकर साथ-साथ रहते हैं, न कभी शिव शक्ति विलग होते हैं और न शक्ति ही शिवसे कभी पृथक रहती है। केवल व्यवहार के लिए दोनों को पृथक-पृथक रूप से वर्णन किया जाता है, वैसे दोनों एक हैं, शुद्ध चेतन स्वरूप है और सदैव एक रहकर ही अखण्ड आनन्द से परिपूर्ण रहते हैं।

अस्तु, शिव शक्तिमान है, शक्ति उनकी इच्छा है, जिससे वे सब कुछ कर सकते हैं। अतः न शिव शक्ति रहित है और न शक्ति शिव से पृथक है। शक्ति के बिना शिव अपूर्ण है और शक्ति भी शिव के बिना अपूर्ण रहती है।[2] इसी कारण शिव प्रकाश रूप और शक्ति विमर्श या स्फूर्ति रूप है। यह सम्बन्ध शिव प्रतिबिंब रूप माना गया है। जिस प्रकार चने के छिलके के अन्दर दो दल निकलते हैं उसी प्रकार परात्पर तत्व भी शिव और शक्ति रूप है।

१- सर्वाकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः।

—तन्त्रसार, पृष्ठ ६

२- 'न शिव शक्ति रहतो न शक्ति र्व्यतिरेकरणी।'

—सोमानन्द - शिवदृष्टि पृ० १६

यह शक्ति ही शिव के सारे देह कार्य करती है अतनु चिदेकमात्र शिव का कोई शरीर नहीं है। अतः शक्ति ही शिव की देह है, शक्ति के द्वारा ही शिव ब्रह्माण्ड की सारी क्रियायें करते हैं। शक्ति और शक्तिमान में जो भेद कल्पना है, वह एक भेद का मान मात्र है।[1] शक्ति की पृथक सत्ता परमपुरुष का अवभासन मात्र है। वे दोनों एक ही है, शिव विषयी है, शक्ति विषय हैं, शिव भोक्ता है, शक्ति भोग्या है, शिव दृष्टा है, शक्ति दृष्टव्य हैं। शिव आस्वादक है, शक्ति आस्वाद्य है, शिव मन्ता और मन्तव्य शक्ति।[2] चन्द्र-चन्द्रिका के तुल्य शिव-शक्ति की अभिन्न है।

अतः इन्हीं पंच शक्तियों के द्वारा शक्ति युक्त परमशिव अपने को स्वमित्ति पर जगत रूप में परिणत करते हैं।

३- सृष्टि-जगत :-

शिव या आत्मा नामक मूलतत्व जब सृष्टि, स्थित, संहार, तिरोधान और अनुग्रह नामक पांच क्रियाओं में रत होता है, तब सृष्टि की रचना होती है।[3] सारी सृष्टि ही परमेश्वर का लीला स्पंदन है। धारामयी शक्ति के कल्लोल के अन्दर से ही जगत् रूपी लहरी जागृत होती है। जिस प्रकार दूध में घृत सूक्ष्म रूप में रहता है तथा घृत कार्य के प्रति दूध अव्यक्त कारण कहलाता है, इसी प्रकार जगत् कार्य के प्रति पराशक्ति अव्यक्त कारण कहलाती है, अपनी उत्पत्ति के पूर्व जगत् इसी पराशक्ति में लीन रहता है। यह पराशक्ति स्वेच्छा से अपने स्फुरण को स्वयं देखती है तभी विश्व की सृष्टि होती है। इस दृष्टि अथवा सृष्टि व्यापार में शिव तटस्थ रहते हैं उनकी स्वातंत्र्य शक्ति ही सब कुछ करती रहती हैं। वह स्वयं में जगत को इस प्रकार प्रतिभासित करता हैं जैसे जगत उससे भिन्न हो, यद्यपि वास्तव में ऐसा नहीं है-'जिस प्रकार दर्पण में नगर, वृक्ष आदि का प्रतिबिंब दिखाई देता हैं उसी प्रकार इस चिदात्मा से

१- जयरथ कृत टीका - ध्वन्यालोक, पृष्ठ - ११०-१११

२- शिव पुराण - वायवीय संहिता - उत्तर भाग - ५।५६-६१

३- प्रत्यभिज्ञा हृदयम्, पृष्ठ संख्या - २२

संसार प्रकट होता है तथा जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिंबित नगर, आदि दर्पण से पूर्णतः अभिन्न रहते हैं उसी प्रकार यह संसार भी उस चित् शक्ति में अभिन्न रूप से विद्यमान रहता है ।[1]

इस प्रकार सृष्टि या विश्व उस शिव या आत्मा का ही स्वरूप है । वही अपनी इच्छा से उसका उन्मेष करता है ।[2] विश्व के उन्मेष को आभास या आभासन कहते हैं । प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार विश्व का उन्मीलन चिति शक्ति की इच्छा पर निर्भर है । जब उसकी इच्छा होती है तभी वह अपनी भित्ति पर या अपने अन्तर्गत ही इस समस्त विश्व का प्रकाशन करती है ।

यह सारी सृष्टि उस अनन्त शक्ति सम्पन्न शिव में ही विराजमान है । शिव सागरवत् है और यह विश्व उस संसार की अनन्त लहरों के समान है । इस प्रकार यहाँ ब्रह्म या आत्मा तथा सृष्टि में पूर्ण अभेद का प्रतिपादन किया गया है । इसका आशय यह है कि जो कुछ भी जड़जड़ात्मक विश्व वैचित्र्य तथा सृष्टि आदि की जागृत अवस्थायें हैं । वे सब परमेश्वर हैं और उनसे रहित कुछ भी नहीं हैं ।[3] इस सम्पर्क में अभिनव गुप्त का विचार है कि स्वयं शिव प्रकास्य और जगत भी अप्रकाश रूप नहीं है । इस प्रकार सृष्टि को शिव से अभिन्न कहकर उसे भी प्रकाश रूप माना गया है ।[4]

प्रत्यभिज्ञा दर्शन का आभास वेदान्त के 'विवर्त' से सर्वथा अलग है । वेदान्त ने जगत को विवर्त बतलाते हुए केवल नाम-रूप-मात्र कहा है जबकि प्रत्यभिज्ञा दर्शन में इसे चिति का आभास मानते हुए सत्य कहा गया है । आचार्य

१– तन्त्रालोक, भाग २ पृष्ठ ५३-५४

२– स्वेच्छयास्वाभित्तौ विश्वमुन्मीलयति । –प्रत्यभिज्ञा हृदयम् पृ०सं० ५, ६

३ - तंत्रालोक– भाग १, पृष्ठ ८६

४– "जो स्वयं प्रकाशित नहीं है, उसे कोई क्योंकर प्रकाशित कर सकता है । जो श्वेत प्रासाद नहीं है, उसे कोई कैसे श्वेत प्रासाद के रूप में प्रकाशित कर सकता है । –तंत्रलोक भाग १, पृष्ठ ८९

अभिनव गुप्त का इस संदर्भ में यह मत सर्वथा समीचीन है कि जिस प्रकार निर्मल दर्पण में भूमि जलादि विभिन्न पदार्थ प्रतिबिंबित होते है, उसी प्रकार पूर्ण से विद् रूप परमेश्वर में यह विश्व भी अभिन्न रूप में अवभासित होता है ।[1]

४– काम कला–

जिस आनन्दरूपा शक्ति से यह विश्व उत्पन्न होता है, उसे शैव दर्शन में कामकला कहा गया है। यह मूलशक्ति है। इसे त्रिपुर सुन्दरी भी कहा गया है। श्री पुण्यानन्द ने अपनी पुस्तक काम-कला- विलास में कहा है– नादरूपा शक्ति एवं बिन्दु रजोमयी शक्ति तथा शोण बिन्दुत्व वीर्यमय शिव दोनों के पारस्परिक संयोग से सृष्टि का विकास होता है, आगे चलकर बतलाया है कि शिव ही काम है और शक्ति ही कला है। अतएव काम-कला के रूप में शिव-शक्ति के सामरस्य से ही सृष्टि का विकास होता है।[2] जिस तरह स्त्रीतत्व और पुरुष तत्व के योग से साधारण संतति की उत्पत्ति होती है,उसी तरह प्रत्यभिज्ञा दर्शन में आनन्द रूपा शक्ति एवं चित् रूप शिव को सोमतत्व एवं अग्नि तत्व एवं नाद बिन्दु कह कर दोनों के पारस्परिक संघट्टनात्मक सामरस्य से सम्पूर्ण विश्व का विकास सिद्ध किया गया है।[3] इस काम-कला रूप मूल शक्ति को ही सैंयत्रिकोण रूप कहकर इच्छा-ज्ञान-क्रिया रूपा भी कहा गया है, इसे बिन्दुमय चक्र में सदैव आसीन रहने वाली त्रिपुर सुन्दरी देवी कहा गया है।[4] शक्ति को शिव निर्मल आदर्श कहा गया है। वह सुखरूपिणी है। भाविचरा चर-बीज रुपिणी होने

१– चेतनो हि स्वात्मदर्पणे भगवान् प्रतिबिम्बिवद् आभासयति ।
इति सिद्धान्तः — -ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी भाग-२, पृष्ठ-१५३

२– सितशोण– बिन्दु युगलं विविक्त शिव शक्ति संकुचत्प्रसरम्–
—पुण्यानन्द – श्लोक–१२

३– तंत्रालोक भाग २, पृष्ठ ९८, १२८, १९२, १९३

४– आसीना बिन्दुमये चक्रेसा त्रिपुरं सुन्दरी देवी ।
-श्री पुण्यानन्द–कामकला-विलास स्वे
—श्लोक संख्या ३७

के कारण वह शिव रूप-विमर्श निर्मलादर्श है। शिव की सारी इच्छा या काम को पूर्ण करने के कारण यह कला विमर्श रूपिणी कामेश्वरी कहलाती है।

५- माया-

'माया' शब्द 'मा' और 'या' (उपनिषद् सम्मत) पदों से बना है। 'मा' का अर्थ प्रलय काल में जगत का अधिष्ठान तथा 'या' का अर्थ सृष्टि काल में अभिव्यक्त होने वाला पदार्थ है, अर्थात प्रलय काल में जीव लीन हो जाते हैं तथा सृष्टिकाल में जिससे उत्पन्न होते हैं, उसका नाम माया है। अतः जगत् की मूल प्रकृति को माया के नाम से अभिहित किया जाता है।[1]

शैव तन्त्रों में यह वस्तु रूपा बतलाई गई है। यह अशुद्ध सृष्टि का मूल कारण है। यह एक तथा नित्य है। उपनिषदों में ईश्वर की सृजन शक्ति, जीव की अविद्या तथा आचार की कुटिलता के अर्थ में माया शब्द प्रयुक्त हुआ है। शंकराचार्य ने भी माया का प्रयोग इसी उपनिषद् सम्मत अर्थ में किया। इस प्रकार 'माया' उपनिषदों और शंकराचार्य दोनों के अनुसार ईश्वर की शक्ति, अविद्या तथा उसके परिणामभूत मिथ्याचार के अर्थ में पाई जाती है।[2]

माया के सम्बन्ध में शैव संतो की धारणा है कि वह परमात्मा से उत्पन्न है तथा उसका कार्य सृष्टि सृजन है। इसके दो रूप हैं-१-सत्य और २- मिथ्या

सत्य रूप सत पुरुष की प्राप्ति में सहायक है तथा मिथ्या माया मनुष्य को ईश्वर से विमुख कर करती है। यह माया धोखे में डालने वाली है तथा त्रिगुणात्मक है, यह सृष्टि, पोषण एवं संहार करती है।

१- आर्य संस्कृति के मूलाधार- श्री बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ-३४५-४६

२- शंकराचार्य का आचार दर्शन— डॉ० रामानन्द तिवारी, पृष्ठ ६१

यह माया ईश्वर की शक्ति है। परमात्मा निराकार है और इच्छा शक्ति साकार। इच्छा शक्ति से उत्पन्न जगत के चित्र में माया, महामाया और योग माया का ही विवरण है।[1] इच्छा अथवा विमर्श के दो भेद मिलते हैं— (१) चिद् रूपा और (२) माया रूपा। इन दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध है।[2] माया तीन रूपों में विभक्त की गई है – (१) माया, (२) महामाया और (३) योग माया।

माया चिद्रूपिणी शक्ति का सगुणरूप है। यह काष्ठ में अग्नि के समान ही इस चिद्रुपिणी शक्ति में व्याप्त है। तंत्रमत में महामाया, माया और माया तत्व आदि शब्द माया के अर्थ में प्रयुक्त हुए है। दार्शनिको ने विमर्श के चिद् रुपा और माया रूपा भेद को समवायिनी और परिग्रहरुपा बतलाया है। यह परिग्रह रूपा- शुद्ध और अशुद्ध भेद से नामित की जाती है। समवायिनी स्वाभाविकी है जो शिव में नित्य समवेत रहती है। शुद्ध रूप को ही विन्दु या महामाया कहा जाता है, अशुद्ध रूप माया है।

यह शुद्ध परिग्रह रूपा महामाया या विन्दु विभिन्न अवस्था में अभिव्यक्त होती है। इनको परा, सूक्ष्मा और स्थूला भी कहा जाता है।[3] बिन्दु की परावस्था ही महा माया है। यह परम कारण और नित्या है। इस महामाया के विक्षुब्ध होने पर शुद्ध धामों तथा उनमें निवास करने वाले मंत्रों अथवा मंत्रेश्वरों का जन्म होता है। इससे रौद्री, ज्येष्ठा और वामा शक्तियां उत्पन्न होती हैं, इस शक्ति के रुद्र शिव रूप से रुद्र, ब्रह्म और विष्णु उत्पन्न होते है। और इनके क्रमिक संयोग से अग्नि, चन्द्र सूर्य तमस्, रजस्, सत्, ज्ञान, इच्छा और क्रिया आदि का जन्म होता है।

१— श्री पारसनाथ, माया, महामाया, योगमाया—कल्याण, साधना—
-अंक पृष्ठ ३६९

२— शक्ति एण्ड शक्ति, आर्थर एव — पेज १३६

३— गोपीनाथ कविराज : तांत्रिक दृष्टि- कल्याण- साधना अंक,
पृष्ठ ४८१

अशुद्ध परिग्रह शक्ति माया है। यह महामाया की सूक्ष्म स्थिति है। शुद्ध अध्वा का उपादान कारण यही है। श्रोत, त्वक, चक्षु जिह्वा, घ्राण आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्, पाणि, पाद्, वायु, उपस्थ पांच कर्मेन्द्रियाँ, शब्द, स्पर्श, रुप,गंध पाँच विषय, आकाश, वायु अग्नि भूमि तथा जल पांच भूत तथा कला एवं कंचुक अशुद्ध अध्वा के ही अधीन है। यह सब माया का कार्य है। माया से ही तत्व एवं भुवनात्मक कलादि तथा प्रकृति आदि परम्परागत रूप से पैदा होते है। समग्र अशुद्ध अध्वा का मूल कारण ही माया है। इसको 'जननी' तथा 'माहिनी' भी कहा गया है। यह शुद्ध और अशुद्ध परिग्रहा शक्ति आत्म तत्व की अभिव्यक्ति में प्रमुख अंश है। चिद्रुपा शक्ति का शिव के सम्बन्ध के कारण विशिष्ट महत्व है।

समवायिनी शक्ति दृक्शक्ति (ज्ञान शक्ति) तथा क्रियाशक्ति (कुंडलिनी) भेद से दो प्रकार की मानी गई है। 'कुंडलिनी' जननी महाकुंडलिनी, परावाक, शब्द ब्रह्म स्वरुप सर्वत्र व्यापक और तत्व ज्ञान की साधन भूत चिद्रुपा भी कही गई है।[1] यही आत्म विमूढ पुरुषों का बंधन हेतु है, योगाभ्यास द्वारा जागृत कर लेने पर वही मोक्ष प्राप्ति में सहायक है। चिद् और जड़ इसके दो अंश है। अचिद् अंश माया का रूप कहलाता है जिसको शैवमत में 'विच्छीला' चिद्मिणी माना जाता है। यह अनन्त रूपा, अनन्त ज्योतिमया शक्ति विश्व चेतना है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण माया द्वारा माना गया है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में माया को स्पष्ट ही परमेश्वर की शक्ति बताया गया है।[2] इसी के साथ 'माया तत्वात् विश्व प्रसव' कह कर इस माया से ही सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति बतलाई गई है। यह माया शक्ति ही जीव एवं परमेश्वर में भेद उत्पन्न करती है।[3]

१- श्री गोरखनाथ : सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति, पृ० ४७

२- 'तद्वभास कारिणी च परमेश्वराय माया नाम शक्तिः'

— अभिनवगुप्त- तंत्रसार, पृष्ठ ११-१९

३- तन्त्रालोक भाग-६ पृष्ठ १६

अतः प्रत्यभिज्ञा दर्शन में माया परमेश्वर की सृजनशक्ति के रूपमें चित्रित की गई है जो शिव से पृथक् नहीं है, उनमें स्थिति होने के कारण सत् रूपा है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन की माया वेदान्त की माया की भांति सद्सदभ्याम निर्वचनीय नहीं है।

६– जीवः–

प्रकृति से अवच्छिन्न चैतन्य जीव है।[1] सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म के चित् अंश से जीव की उत्पत्ति मानी गई है। परमशिव की, एक से अनेक होने की इच्छा से उसके अंशरूप जीव की उत्पत्ति होती है सच्चिदानन्द शिव आनन्द शक्ति का तिरोभाव कर, चित् और सत् धर्म से अनेक जीवों का आविर्भाव करता है।[2] नाम–रूप की उपाधि से शिव ही जीव का रूप धारण कर लेता है। उपाधि वश संसार में फंसा हुआ जीव अपने को शिव से अभिन्न समझता है। जीव और शिव के वास्तविक भेद न होकर औपाधिक भेद है।[3] जीव स्वरूपतः नित्य विभुचेतन एवं अन्यान्य, शिवधर्मं से युक्त होने पर भी, संसारावस्था में इन सबका अनुभव नहीं कर पाता। जीव की चैतन्य शक्ति शिव की शक्ति के समान ही है, भेद केवल इतना है कि शिव के स्वरूप में यह सदा अनावृत रहता है और जीव में सदा वर्तमान रहने पर भी वह पास समूह से अवरुद्ध रहता है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जीव को एक मात्र 'चिति' का प्रस्फुरण बतलाया गया है। जब आत्मा तीन प्रकार के मलों–आणव, कार्य एवं मायाय एवं तीन प्रकार के कंचुकों–आणव मल वाला प्रथम कंचुक, मलाधिष्ठापक निरोध शक्ति तथा तीनों प्रकार के मलों से युक्त माया नामक तृताय कंचुक से आवृत्त रहता है, तब उसे जीव कहा जाता है। इन मलों को पाश भी कहते हैं। इन पाशों से आबद्ध जीव को प्रत्यभिज्ञा दर्शन में पशु कहा गया है।[4]

१– षड्दर्शन, रंगनाथ, पृष्ठ ११२
२– अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, दीनदयाल गुप्त–पृष्ठ ४२१
३– सूफीमत और हिन्दी साहित्य, डा० विमलकुमार जैन, पृष्ठ १७६
४– पाशश्चतुर्विधो मल कर्म मायारोधशक्ति भेदात्। – स० सं०, पृष्ठ-१६५

यह जीव भूत जगत मे (तक) सीमित न रहकर अपने को समस्त सांसारिक क्रियाओं का कर्ता मानता है तथा कंचुकों से संकुचित रहता है। इसी कारण इसे प्रमाता, अणु, पुमान् आदि कहा गया है। [1]

जीव की ५ अवस्थायें मानी गई हैं–

१–जाग्रत:–

सर्व साधारण विषयों के बाह्येन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान को जाग्रत अवस्था कहा जाता है। इसमें जीव प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण एवं प्रमा से युक्त होकर इस स्थावर–जंगात्मक विश्व की स्थिति मानता है।

२–स्वप्न:–

जीव की विकल्पात्मक स्थिति स्वप्नावस्था है।

३–सुषुप्तावस्था:–

इस अवस्था में जीवात्मा प्रमेय एवं प्रमाणादि के क्षेम से परे अपनी आत्मा–मात्र में विश्रान्त का अनुभव करता है। शिवसूत्रकार अविवेकी माया सौषुप्तम् कहकर सुषुप्तावस्था में जीव में अविवेक, मामा या मोह में लिप्त माना जाता है।

४-तुरीयावस्था:–

इसमें प्रमाता, प्रमेय, और प्रमाण तीनों से भिन्न केवल प्रमा ही शेष रहता है। इसे संवित्प्रकाश की अवस्था भी कहते हैं।

५-तुर्यातीत:–

जीव की यह पूर्ण अवस्था है। इसी को परमपद भी कहते हैं इसमें जीव पूर्णनवच्छन्नव पुरानन्द निर्भर अर्थात पूर्ण एवं स्वछन्न आनन्द को प्राप्त है। इस अवस्था को 'अनुत्तरावस्था भी कहा गया है। इस अवस्था को प्राप्त करके जीव निष्प्रपञ्च, निराभास, शुद्ध, सर्वातीत होकर अपनी आत्मा में स्थित शिव का साक्षात्कार करता हुआ शिवत्व को प्राप्त होकर संसार से मुक्त हो जाता है। [2]

१– तंत्रालोक, अभिनव गुप्त

२– तंत्रालोक, भाग २, ७ व १२ तथा शिवसूत्र विमर्शिनी–१।८,६, १०।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जीव को संसारी कहा गया है। वैसे जीव भी आत्मा पर शिव है, परन्तु तीनों मलों से आवृत्त होने के कारण वह मलिन, अस्वतन्त्र, अशुद्ध आदि हो जाता है, मलों से आवद्ध होने के कारण जीव अपनी शक्तियों शक्तियों (सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व पूर्णत्व, नित्यत्व, व्यापकत्व आदि से दरिद्र होकर सांसारिकता को प्राप्त होता है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जीव की ४ श्रेणियां बतलाई गई हैं।

१—सकल:—

जिसमें तीनों मलों (आणव, कार्य और मायाया) से युक्त है, वह सकल जीव कहलाता है।

२-प्रलयाकल:—

जिसमें केवल दो मल आणव व कार्य शेष हैं, वह प्रलयाकाल जीव है।

३-विज्ञानाकल:—

जो केवल आणव मल से युक्त है, वह विज्ञानाकल जीव है।

४-शुद्ध:—

शुद्ध जीव वह है जो समस्त ज्ञान क्रिया आदि से स्वतन्त्र होकर शुद्ध-शुद्ध चैतन्य स्वरूप होकर परमशिवतत्व को प्राप्त कर लेता है।[1]

७-मोक्ष:—

मोक्ष का अर्थ है जीव का ब्रह्म में लय हो जाना। जीव अपने दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यह न तो शारीरिक, मानसिक और धार्मिक कर्मों पर निर्भर है और न ही उत्पन्न होता है।[2] शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष आत्मा का प्राप्त स्वरूप है। इसमें आत्मा का ब्रह्म से अभेद नहीं।

१— तंत्रालोक भाग १, ६, ७७ नेत्र तंत्र भाग २ तथा प्रत्यभिज्ञा हृदय में विवेचन हुआ है।

२— डा० यदुनाथ सिन्हा, भारतीय दर्शन पृष्ठ ८४

होता है वह ईश्वर के ऐश्वर्य का भोग करता है इससे प्राप्त आत्मानन्द के उपभोग में जीव के ब्रह्म के साथ साम्य होता है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में आत्मानन्द को ही मोक्ष कहा गया है; वही चिदानन्द और वही सामरस्य एवं स्वातंत्र्य कहलाती है। अतः जीव के चिदानन्द लाभ को मोक्ष कहा जाता है इसकी प्राप्ति 'अहं महेश्वर' के ज्ञानोदय से होती है।[1] इस सन्दर्भ में 'प्रत्यभिज्ञा' कल्पना पर पुनः विचार करना होगा। 'प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है - ज्ञान वस्तु को पुनः पहचानना या जानना। 'प्रत्यभिज्ञा' की उपयोगिता पर विचार करते हुए आचार्य उत्पल कामिनी का उदाहरण देते हैं कि जिस प्रकार कोई कामनी आए हुए मनोवांछित प्रियतम को पाकर भी न पहचान सकने के कारण प्रमुदित नहीं होती है, पर दूती के कहने से या उसके लक्षणों के अभिज्ञान से प्रियतम को पहचानकर पूर्णत्व प्राप्त करती है, इसी प्रकार आणव, शाक्त, शांभव आदि उपाय द्वारा आत्म चैतन्य के स्फुरण होनेपर भी साधक ज्ञान तभी प्राप्त कर सकता है, जब गुरू के उपदेश द्वारा यह शिवके गुण को पहचान लेता हैं। अतः प्रत्यभिज्ञा यथार्थ में मोक्ष शिवत्व लाभ मे प्रधान साधक है।[2] ज्ञान व भक्ति का सामंजस्य प्रत्यभिज्ञा दर्शन में देखने को मिलता है। जिसे मोक्ष कहा जाता है, वह इसी निश्य सिद्ध ज्ञान भक्ति का ही आवरण भंग जनित समुन्मेष मात्र है। अतः प्रत्यभिज्ञा दर्शन या त्रिक् दर्शन मे इसी को चिदानन्द लाभ कहा गया है।[3]

१– डा० त्रिगुणायत हिन्दी निर्गुण काव्य धारा पृष्ठ १९१

२—तैस्तैरप्युपयाचितैरुपनतस्तन्व्याः स्थितोऽप्यन्तिके
कान्तो लोक समानं एवम् परिज्ञातो न रन्तुंयथा।
लोकस्यैव तथानवेक्षितगुणाः स्वात्मापि विश्वेश्वरो
नैवालं निजवैभवाय तदियं तत्प्रत्यभिज्ञोदित्व।
— ईश्वर प्रत्यभिज्ञा ४।२।२

३—शैवधर्म और दर्शन, डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ-८३

जीव की मुक्ति हेतु प्रत्यभिज्ञा दर्शन में तीन साधन बताये गये है-
(१) शांभवोपाय, (२) शक्तोपाय तथा (३) आणवोपाय।

१— शांभवोपाय—

इस साधन के अन्तर्गत गुरू शिष्य को दीक्षा देकर 'शिवोऽहम्' सुनाता है। इसको सुनते ही शिष्य के जीवात्मा में 'शिवोऽहम्' का आवेश हो जाता है और वह स्वयं अपने को शिवरूप समझने लगता है तथा यह अनुभव करता है कि संपूर्ण विश्व मुझसे ही उदित हुआ है, मुझमें ही प्रतिबिंबित है तथा मुझसे अभिन्न है।

२— शक्तोपाय—

इसके अन्तर्गत ध्यान, पूजन एवं अर्चना आदि को विशेष महत्व दिया जाता है। जीवात्मा अपने विकल्प रूपी दर्पण में बार—बार अपने स्वरूप का साक्षात्कार करता है तथा उसमें तन्मयी भाव को प्राप्त हो जाता है। यही मोक्ष का स्वरुप है।

३— आणवोपाय—

इसमें जीवात्मा पहले विकल्पपूर्ण रहता है और जड़ एवं चेतन में भेद मानता है, परन्तु जप, पूजा मंत्र, दीक्षा आदि के द्वारा धीरे-धीरे समझने लगता है कि शिव की शक्ति सर्व चेतन में स्थित है। इस क्रिया के उपरान्त ज्ञान का अभ्युदय होता है। ज्ञान के अभ्युदय के साथ जड़ रूप का तिरोधान हो जाता है। वह सर्वत्र चैतन्य भाव में आप्लावित हो जाता है। उसे कण—कण में चेतन सत्ता दृष्टिगोचर होने लगती है और उसमें वह तल्लीन हो जाता है। यह आणवोपाय द्वारा प्राप्त मोक्ष है।

अतः प्रथम उपाय में शिव के आत्मस्वरूप की अनुभूति तथा शेष दो उपायों में तदाकार परिणति होती है और इसी के द्वारा स्वरूप का ज्ञान होता है। मोक्ष प्राप्त हेतु शांभवोपाय सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अनुपाय में जीवात्मा को कुछ नही करना होता है। वास्तव में यह आनन्द की स्थायी अनुभूति की दशा है। इसी कारण इसे आनन्दोपाय भी कहा गया है, इस दशा में परम प्रभु के अनुगृह भी प्राप्ति कर जीव कृत्य—कृत्य हो उठता है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार मोक्ष का अर्थ है पूर्णत्व की प्राप्ति। भोग और मोक्ष के मध्य अभेद, चित्त की स्थिरता ही मोक्ष है। भोग और मोक्ष का अभेद ज्ञाता और ज्ञेय के अभेद के सदृश्य समझना चाहिए।[1]

८— मूल तत्व शिव का विकास ३६ तत्वों में—

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार जब शिव अपनी शक्ति से सृष्टि का आविर्भाव करने की इच्छा करता है, तब उससे छत्तीस तत्वों[2] का विकास होता है। इन्हें तीन भागों[3] में विभक्त किया गया है। इसमें क्रमशः दो, तीन और इकत्तीस तत्व अन्तर्भूत है—

१— शिव तत्व—

(१) शिव और (२) शक्ति।

२— विद्या तत्व—

(३) सदाशिव, (४) ईश्वर तथा (५) शुद्ध विद्या

३ —आत्म तत्व—

(६) माया, (७) कला (८) विद्या- (९) राग (१०) काल, (११) नियति (१२) पुरुष, (१३) प्रकृति (१४) बुद्धि, (१५)अहंकार, (१६) मन (१७-२१) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक् और श्रवण) (२२-२६) पांच कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, पायु,उपस्थ)

१— तस्याः भोक्ता स्वात्म आधारभोग्ये को कार एषयः।
स एव भोगः सा मुक्तिः स एव परमं पदम्॥ [प्रबोध पंचदशिका]

२— स्वकीय कार्य में धर्म समुदाय में या समान गुण वाले वस्तु में, सामान्य रूप से व्यापक पदार्थ को तत्व कहते हैं—

स्वस्मिन् कार्येऽर्थ धर्मावि यद्वापि स्वसदृग्गुणे
आस्ते सामान्य कल्पेन तननाद् व्याप्तृभावतः॥
तत् तत्वक्रमशः पृथ्वी प्रधानं पुंशिवादयः। तंत्रालोक ६/४-५

३— शैवागमों में इसे तत्वत्रिधा कहा गया है।

(२७-३१) पांच विषय या तन् मात्रायें (शब्द स्पर्श, रूप रस और गंध) और (३२-३६) पांच महाभूत (आकाश, वायु जल, अग्नि और पृथ्वी)। उपर्युक्त तत्वों का विवेचन अवलोकनीय है इनमें शिवतत्व मूल तत्व होने के कारण समस्त का विश्व का दृष्टा एवं व्यापक है। यह अपनी इच्छा से अपने अन्तर्गत व्याप्त विश्व का प्रकाशक है। ये स्वयं प्रकाश, भूमा, परात्पर ब्रह्म और सर्वव्यापी है, उनकी साकार लीला ही असीम परमतत्व का मान चित्र है। यह केवल 'अहं' द्वारा ही अनुभवगम्य है। शक्ति शिव का अभिन्न अंग होने के कारण अपनी पृथक सत्ता से हीन मानी गई है। परमेश्वर में में आनन्द शक्ति की प्रधानता से वह शक्ति तत्व कहलाता है। शिव और शक्ति दोनों एक है, शिव विषयी है, शक्ति विषय, शिव भोक्ता है, शक्ति भोग्या, शिव दृष्टा है, शक्ति दृष्टव्य, शिव आस्वादक हैं, शक्ति आस्वाद्य हैं।[1] चन्द्र--चन्द्रिका के तुल्य शिव और शक्ति की अभिन्न है। शक्ति के पांच रूपों से ही शिव भी पांच रूप धारण करता है।

शिव चित्– शक्ति की प्रधानता शिवतत्व, आनन्द शक्ति की प्रधानता रहने पर शक्ति तत्व, इच्छा शक्ति की प्रधानता होने पर सदाशिव तत्व, ज्ञान शक्ति की प्रधानता होने पर ईश्वर तत्व तथा क्रिया शक्ति की प्रधानता होने पर सद् विद्यातत्व कहलाता है।[2] अतः शक्ति तत्व को समस्त विश्व का आधार सूक्ष्म एवं अमृत रूपा कहा गया है।[3] जिस प्रकार 'अहं' (मैं) से

१– मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव- (डॉ० श्रीमती कमला भंडारी) पृष्ठ– ३६

२– 'चित् प्राधान्ये शिवतत्वम् आनन्द प्राधान्ये शक्ति तत्वम् इच्छा प्राधान्ये सदाशिव तत्वम्, ज्ञान शक्ति प्राधान्ये ईश्वर तत्वम्, क्रिया शक्ति प्राधान्ये विद्यातत्वम् इति।' --तंत्रसार, पृष्ठ संख्या ७३–७४

३– स्वच्छन्द तंत्र, भाग ५–ब पृष्ठ, ५३५

शिव तत्व का अनुभव होता है उसी प्रकार 'अहमस्मि (मैं हूं से शक्ति तत्व का अनुभव होता। इस प्रकार शिव और शक्ति दोनों तत्व पृथक-पृथक वर्णित होने पर वे अलग नहीं हैं। शिव तथा शक्ति दोनों तत्व शाश्वत हैं और सदैव एक रूप होकर साथ रहते हैं।[1]

शिव शक्ति से नाद रूप में उत्पन्न तत्व सदाशिव कहलाता है। 'मैं ही शिव हूं,' यह ज्ञान सदाशिव तत्व है। सदाशिव तत्व में इच्छा शक्ति की अंतरंग ज्ञान शक्ति की उद्रेकावस्था में क्रिया शक्ति का प्रवेश होता है। इसी उद्रिक्तज्ञान शक्ति का आवरण करके 'अहमिदम्' (मैं यह प्रपंच हूं) इस प्रकार अभिमान करना ही सदाशिव तत्व हैं।[2] यह सदाशिव तत्व नादरूप है, है, अदृष्ट शिव मूर्ति से व्याप्त स्फोट ध्वनि ही नाद है, और यह नाद ही सदा शिव है।[3] संसार के प्रलय एवं निमेष को सदाशिव तत्व कह सकते है। इस तत्व का अनुभव 'अहं- इदम द्वारा होता है (अहं→शिव + इदम→विश्व)। चौथा तत्व 'ईश्वर' विश्व के उन्मेष का द्योतक है।[4] बाह्य उन्मेष ही ईश्वर तत्व है।[5] ईश्वर तत्व में इदं अर्थात् विश्व का स्फुट रूप से ज्ञान होने लगता है। यह तत्व सदाशिव का बाह्य रूप है। जगत को अपने भिन्न रूप में देखना ही ईश्वर तत्व है इससे 'इदं मह' (यह मैं हूं) का अनुभव होता।[6] इस प्रकार ईश्वर तत्व में शिव गौण हो जाता है और विश्व को प्रधानता मिल जाती है। पंचम तत्व 'सद्विद्या' के द्वारा 'अहमिदमस्मि' (मैं यह विश्व का हूं) का बोध

१— शिव दृष्टि-सोमानन्द, पृष्ठ ९६

२— शक्ति, विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त निरुपण- पं० काशीनाथ शास्त्री, वेदस्त अंक पृ० २३१

३— नेत्रतंत्र भाग २, पृष्ठ २८७-२८८

४— ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी भाग २, पृष्ठ १०४

५— ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी, भाग २ पृ० सं० १९४-९५

६— तंत्रालोक भाग ६, पृ०सं० २०

होता है। 'समस्त' पदार्थ ज्ञानोपरान्त जिस शक्ति द्वारा अणुजीव को परमेश्वर का बोध होता है, वही सद् विद्या है।[1] जिस प्रकार सदाशिव तत्व प्रलय का द्योतक है, ईश्वरतत्व केवल उदय का द्योतक है, उसी सद्विद्यातत्व में प्रलय तथा उदय का निमेष और उन्मेष दोनों रहते हैं।[2] शिवतत्व में अहं का विमर्श होता है, सदाशिवतत्व में अहमिदं 'विमर्श' होता है और ईश्वरतत्व में 'इदमिदं' विमर्श होता है सदविद्या में अहं-इदं दोनों की समभावेन प्रधानता रहती है, जबकि अन्य तीनों में प्रत्येक स्थल में प्रथमपद की प्रधानता रहती है।[3]

१— मृगेन्द्रतंत्र (१।१६८-६९)

२— ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी भाग—२

३—प्रत्यभिज्ञा दर्शन में परमेश्वर की पांच शक्तियां मानी गयी हैं – (१) चित् [२] आनन्द [३] इच्छा [४] ज्ञान [५] क्रिया चिद् शक्ति की प्रधानता से शिव तत्व, आनन्द शक्ति की प्रधानता से शक्ति तत्व, इच्छा शक्ति की प्रधानता से सदाशिव, ज्ञानशक्ति की प्रधानता से ईश्वर तत्व और क्रिया शक्ति की प्रधानता से वही परमेश्वर विद्यातत्व कहलाता है। [तंत्रसार पृष्ठ सं० १३—१४]

उक्त पांचों तत्व परमेश्वर की शक्ति के ही विकसित रूप हैं। यह शक्ति तत्व ही समस्त भुवनों का आधार है। यह अत्यन्त सूक्ष्म एवं अद्भुत-रूप माना गया है। तंत्रालोक [भाग ६] में उक्त पांचो तत्वों को क्रमशः शांभव, शक्तिज, मंत्र महेश, मंत्र नायक तथा मंत्र भी कहा गया है।

इन पांच तत्वों को विशुद्ध तत्व बताते हुए शुद्धध्वन् या शुद्ध मार्ग कहा गया है तथा शेष इन तत्वों को अशुद्ध मार्ग माना गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि पांचों तत्वों का संबंध प्रत्यक्षतः शिव से है। शेष ३१ तत्वों का सम्बन्ध माया से लेकर पृथ्वी तक है, जो अपने विविध मलों द्वारा इन तत्वों को आवृत किए रहती है

पूर्वोक्त पाँच शुद्ध तथा अभेद तत्वों के पश्चात माया तत्व का स्थान यह तत्व भेद-सृष्टि का द्योतक है। यह अहं और इदं को पृथक् पृथक् क देती है। अहं मश हो जाता है पुरुष और 'इदमश' हो जाती है प्रकृति। य तत्व शिव से अभिन्न होने पर भी भेद-पूर्ण समस्त सृष्टि को जन्म देने का मू कारण है।[1] यह माया अध, अर्ध्व सर्वत्र स्थित रहती है। तीनों पाशों क जन्म माया ही देती है। इसे विमोहिनी शक्ति भी बतलाया गया है, जिससे पूण प्रकाशित चित् शक्ति का प्रकाश आच्छादित हो जाता है और जीवात्मा उस प्रकाश को हृदयगंम नहीं कर पाता है।[2- [क]]

सातवां कला तत्व माया-जन्य अन्धकार में जीव को क्रिया एवं ज्ञान हेतु अल्प प्रकाश प्रदान करता है। कला तत्व जीव की सर्वकतृत्वं शक्ति को संकुचित करने वाला है। इसके कारण जीव किंचित कर्तृत्व शक्ति वाला बन जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है। कला जीव को इस स्थिति में पहुंचा देती है कि वह अनुभव करने लगता है कि मैं किंचित जानता हूं, मैं किंचित कर्म करता हूं। आदि। मृगेन्द्रतन्त्र में कला का निरूपण दीपक के तुल्यकिया गया है जैसे घने अन्धकार में दीपक से कुछ प्रकाश मिलता है, उसी प्रकार माया द्वारा प्रसारित घने अन्धकार में कला द्वारा ज्ञान एवं क्रिया के लिए किंचित प्रकाश की प्राप्ति होती है। यह तत्व जीवात्मा को अर्ध्व स्थिति में ले जाने वाला माना गया है।

१-तंत्रालोक, भाग ६, पृ० सं० १२८।

२-दक्षिण के शैव सिद्धान्त में माया के दो शुद्ध और अशुद्ध-भेद माने जाते हैं प्रत्यभिज्ञा दर्शन में माया का केवल एक रूप शुद्ध रूप ही माना गया है। इससे उत्पन्न पाँचो तत्व-कला, विद्या, राग, काल और नियति शुद्ध माने गये हैं। वेदान्त में माया को 'अस्ति और नास्ति' कहकर अनिर्वचनीय कहा गया है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में उसका केवल आस्तिक रूप ही माना गया है।

२-[क] ईश्वर प्रतिभिज्ञा विमर्शिनी, भाग-१, पृ० संख्या ३७

आठवां विद्यातत्व है जो सर्वज्ञता का संकोच करने वालाहै जिसके कारण जीव किंचिज्ञ हो जाता है । इसकी उत्पत्ति कला से होती है । यह तत्व पाशों से आबद्ध जीवात्मा के अन्तर्गत ऐश्वर्य स्वभाव को प्रकाशित करता है । यह बुद्धि रुपी दर्पण में नाना पदार्थों, सुख–दुख, मोह आदि के प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है और इस तरह से जीवात्मा को सुखादि प्रत्ययों से परिचित कराता है । अतः इसे बुद्धि अन्य गोचरी मूल समस्त भावों को उत्पन्न करने वाला शक्ति कहा गया ।

नवां राग तत्व सभी प्रकार के योग्य पदार्थों में गुणों का आरोपण करता है । तथा चित् शक्ति के अभिलाषा जाग्रत करने में सहायक है । इस तत्व की उत्पत्ति माया जन्य कला से मानी गई है । यह नित्य तृप्ति गुण के सँकोच का कर्ता है ।

माया– जन्य कला से उत्पन्न 'काल' दसवां तत्व जीव एवं क्रिया की सीमा निर्धारित्त करता है । काल तत्व नित्य व को संकुचित करने वाला तत्व है, जिसके कारण देहादिकों से सम्बद्ध होकर जीव अपने को अनित्य मानने लगता है

मैं कृश हो गया हुं, मैं स्थूल हो गया हूं, मैं स्थूलतर हो जाऊँगाँ आदि कर्मो का विभाजन काल तत्व के द्वारा होता है । निमेष, मुहूर्त, घड़ी आदि प्रत्यों का ज्ञान भी इसी तत्व के द्वारा होता है इसी से काल तत्व को 'कार्यविच्छेदक' तत्व भी कहा गया है । इसी से यह 'घटक्रिया' है । यहां पर क्रिया है– आदि का विभाजन होता है ।

ग्यारहवां तत्व नियति कार्य–कारण की योजना करता है । [1] जीव की की स्वतन्त्र शक्ति को तिरस्कार करने वाला तत्व नियति कहलाता है । इसका

१— तंत्रालोक, भाग ६, पृष्ठ संख्या १६०-६१

[नियतिर्योजनं धत्ते विशिष्टे कार्य मण्डले]

इसका उत्सकला त व है इसे शिव को नियमन करने वाली शक्ति भी कहागया है। यह तत्व नियामक या कार्य-निष्पादक माना गया है, 'नियतिर्योजयत्येन स्वके कर्माणपुद्गलम्' कहकर इसे प्रत्येक जीव को अपने—अपने कर्मों में संलग्न करने वाला तत्व कहा गया है।

बारहवाँ तत्व पुरुष है जो प्रथम पाँच शुद्ध तत्वों वाला आत्मा माया से नियति तक के षट् कंचुकों [1] या आणव मलों द्वारा आवृत होकर सीमित हो जाता है। 'जीव' या 'प्रमान्,' पुदगल आदि इसके अन्य नाम हैं। शक्तिपात (अनुग्रह) की प्राप्ति करके यह समस्त पाशों से मुक्त होकर स्वरूप-स्थिति को प्राप्त होता है।

पुरुष तत्व एक मात्र सीमित व्यक्तिगत आत्मा का द्योतक है। [2] सत् , रज और तम के साम्य अथवा प्रक्षुब्ध रूप को प्रकृति नामक तेरहवाँ तत्व कहा गया है। वह मान्यता साँख्य दर्शन के अनुसार है, परन्तु एक अन्तर को ध्यान में रहकर निर्धारित की गई है। साँख्य दर्शन में प्रकृति स्वतन्त्रतापूर्वक कर्म में लीन माना जाता है, लेकिन प्रत्यभिज्ञा दर्शन में ऐसा नहीं है। यहाँ प्रकृति को ईश्वरेच्छानुसार पुरुष के प्रति लौकिक भाव रखते हुए निर्दिष्ट किया है तथा शिव की इच्छा से ही प्रकृति में क्षोभ का उत्पन्न होना स्वीकार किया गया है। कहने का तात्पर्य है कि प्रकृति जिन बुद्धि या महत्वादिकी उत्पत्ति होती है, उनमें भी यहाँ चिति की इच्छा का होना आवश्यक माना गया है। [3]

१—माया, कला, विद्या, राग, काल एवं नियति,—षट्कंचुक

२—सांख्य दर्शन के समान प्रत्यभिज्ञा दर्शन में आत्माओं को असंख्य बताया गयाहै परन्तु दोनों के बीच अन्तर स्पष्ट रूप से स्पष्ट दिखाई पड़ता है— (१) साँख्य में आत्मा की सत्ता स्वतन्त्र है जबकि प्रतिभिज्ञा दर्शन में इसे एकमात्र का चिति का स्फुरण मात्र कहा गया है। (२) साँख्य का पुरुष पूर्ण चेतन है, अप्रभावित है, लेकिन प्रत्यभिज्ञा दर्शन में पुरुष चेतन होकर भी सर्वथा प्रभावित नहीं रहता। [३] प्रत्यभिज्ञा दर्शन में छै: कँचुकों तथा तीन मलों का वर्णन है। साँख्य में इसका वर्णन नहीं है।

३—तंत्रालोक, भाग ६, पृष्ठ संख्या १६५

बुद्धि अहंकार, अहंकार से मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच तन्मात्रायें और पाँच तन्मात्राओं से पंचभूतों (आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी) की उत्पत्ति मानी गई है ।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार जीव, जगत और शिव एक है, अद्वैत है, उनमें कोई भेद नहीं है, केवल आणव मलों से आबद्ध होकर पुरुष से पृथ्वी तक २३ तत्वों का बाह्येन्द्रियों द्वारा बोध कराने के कारण शिव या आत्मा-जीव या पशु का रूप धारण कर लेता है । इस पशुतत्व को त्याग कर तुर्यातीत अवस्था में शिव को प्राप्त का जीव का चरम लक्ष्य है, जो आनन्द की पूर्ण समरसावस्था है । यह अवस्था इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया के विभेद का लोप होने पर शिवोऽहम् की स्थिति में जीव को प्राप्त होती है । 'शिवोऽहम्' की स्थिति को प्राप्त करना है । जीव विश्वयात्रा का चरम लक्ष्य है ।

५- रसेश्वर दर्शन :

पारे को रसेश्वर मानने वाले वाले शैव भक्तों के एक सम्प्रदाय विशेष को रसेश्वर सम्प्रदाय की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । रसेश्वर सम्प्रदाय के अनुयायी पारे के द्वारा सब सिद्धियों एवं मुक्ति की प्राप्ति मानते हैं ।

सर्वदर्शन संग्रह में इस सम्प्रदाय तथा उसमें निहित सिद्धान्त अथवा विचारधारा का उल्लेख संक्षेप में प्राप्त होता है । रसेश्वर दर्शन में शिव को परमानन्द-दाता, परमज्योति स्वरूप तथा अविकल्प बतलाया गया है । जीव उसके इस (शिव) स्वरूप का अनुभव होते ही समस्त कर्म बंधनों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ।[1]

इसका उत्सकला तत्व है। इसे शिव को नियमत करने वाली शक्ति भी कहागया है। यह तत्व नियामक या कार्य-निष्पादक माना गया है, 'नियतिर्योजयत्येन' स्वके कर्मणिपुद्गलम्' कहकर इसे प्रत्येक जीव को अपने—अपने कर्मों में संलग्न करने वाला तत्व कहा गया है।

बारहवाँ तत्व पुरुष है जो प्रथम पाँच शुद्ध तत्वों वाला आत्मा माया से नियति तक के षट् कंचुकों [1] या आणव मलों द्वारा आवृत होकर सीमित हो जाता है। 'जीव' या 'प्रमाता' पुद्गल आदि इसके अन्य नाम हैं। शक्तिपात (अनुग्रह) की प्राप्ति करके यह समस्त पाशों से मुक्त होकर स्वरूप-स्थिति को प्राप्त होता है।

पुरुष तत्व एक मात्र सीमित व्यक्तिगत आत्मा का द्योतक है। [2] सत, रज और तम के साम्य अथवा प्रक्षुब्ध रूप को प्रकृति नामक तेरहवाँ तत्व कहा गया है। यह मान्यता साँख्य दर्शन के अनुसार है, परन्तु एक अन्तर को ध्यान में रखकर निर्धारित की गई है। साँख्य दर्शन में प्रकृति स्वतन्त्र पूर्वक कर्म मे लीन माला जाता है, लेकिन प्रत्यभिज्ञा दर्शन में ऐसा नहीं है। यहाँ प्रकृति का ईश्वरेच्छानुसार पुरुष के प्रति लौकिक भाव रखते हुए निर्दिष्ट किया है तथा शिव की इच्छा से ही प्रकृति में क्षोभ का उत्पन्न होना स्वीकार किया गया है। कहने का तात्पर्य है कि प्रकृति जिन बुद्धि या महत्वादिकी उत्पत्ति होती है, उनमे भी यहाँ चिति की इच्छा का होना आवश्यक माना गया है। [3]

१—माया, कला, विद्या, राग, काल एवं नियति,—षट्कंचुक

२—सांख्य दर्शन के समान प्रत्यभिज्ञा दर्शन में आत्माओं को असंख्य बताया गयाहै परन्तु दोनों के बीच अन्तर स्पष्ट रूप से स्पष्ट दिखाई पड़ता है— (१) साँख्य में आत्मा की सत्ता स्वतन्त्र है जबकि प्रतिभिज्ञा दर्शन में इसे एकमात्र का चिति का स्फुरण मात्र कहा गया है। (२) साँख्य का पुरुष पूर्ण चेतन है, अप्रभावित है, लेकिन प्रत्यभिज्ञा दर्शन में पुरुष चेतन होकर भी सर्वथा प्रभावित नहीं रहता। [३] प्रत्यभिज्ञा दर्शन में छः कंचुको तथा तीन मलों का वर्णन है। साँख्य में इसका वर्णन नहीं है।

३—तन्त्रालोक भाग ६ पृष्ठ संख्या १६५

बुद्धि अहंकार, अहंकार से मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियां तथा पाँच तन्मात्रायें और पांच तन्मात्राओं से पंचभूतों (आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी) की उत्पत्ति मानी गई है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार जीव, जगत और शिव एक है, अद्वैत है, उनमें कोई भेद नहीं है, केवल आणव मलों से आबद्ध होकर पुरुष से पृथ्वी तक २३ तत्वों का बाह्येन्द्रियों द्वारा बोध कराने के कारण शिव या आत्मा-जीव या पशु का रूप धारण कर लेता है। इस पशुतत्व को त्याग कर तुर्यातीत अवस्था में शिव को प्राप्त का जीव का चरम लक्ष्य है, जो आनन्द की पूर्ण समरसावस्था है। यह अवस्था इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया के विभेद का लोप होने पर शिवोऽहम् की स्थिति में जीव को प्राप्त होती है। 'शिवोऽहम्' की स्थिति को प्राप्त करना है। जीव विश्वयात्रा का चरम लक्ष्य है।

५- रसेश्वर दर्शन :

पारे को रसेश्वर मानने वाले वाले शैव भक्तों के एक सम्प्रदाय विशेष को रसेश्वर सम्प्रदाय की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। रसेश्वर सम्प्रदाय के अनुयायी पारे के द्वारा सब सिद्धियाँ एवं मुक्ति की प्राप्ति मानते हैं।

सर्वदर्शन संग्रह में इस सम्प्रदाय तथा उसमें निहित सिद्धान्त अथवा विचारधारा का उल्लेख संक्षेप में प्राप्त होता है। रसेश्वर दर्शन में शिव को परमानन्द-दाता, परमज्योति स्वरूप तथा अविकल्प बतलाया गया है। जीव उसके इस (शिव) स्वरूप का अनुभव होते ही समस्त कर्म बंधनों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।[1]

रसेश्वर दर्शन का विवेचन निम्न रूप में प्रस्तुत है :—

जीव-मुक्ति का उपाय दिव्य शरीर है। व्याधि-ग्रस्त काया ब्रह्म-साक्षात्कार में कदापि समर्थ नहीं हो सकता है। अतएव स्वस्थ एवं सुदृढ़ शरीर होना अत्यावश्यक है। ऐसे शरीर का नाम है— पिण्डस्थैर्य - शरीर की स्थिरता। मुक्ति ज्ञान लभ्य है। ज्ञान अभ्यास एवं मन्त्र द्वारा प्राप्त होता है। स्थिर शरीर द्वारा ही यह सम्भव है। गोविन्द भगवत्पाद ने ठीक ही लिखा है—

> इति - धन - शरीर भोगोन मत्वा नित्यान सदैव यतनीयम्।
>
> मुक्तो सा ज्ञानात् तच्चभ्यासोत् स च स्थिरै देहे ॥
>
> — (हृदयतंत्र - १।१७-१८)

शरीर को नीरोग एवं दिव्य बनाने के लिए पारद और प्राणायाम को विशेष महत्व दिया गया है। शरीर के अन्दर प्राणवायु और बाहर पारद-इनके प्रयोग से शरीर नीरोग तथा दिव्य काया को प्राप्त करता है। प्राण का नियमन् प्राणायाम से होता है और पारे के उपयोग उसके भस्म से होता है। इस सम्प्रदाय के समर्थक इन दोनों का उपयोग करके अपने शरीर को दिव्य बनाते हैं।

इस मत के अनुयायियों का कहना है कि पारद भगवान शंकर का वीर्य है। इसके नाम की सार्थकता यह है कि यह संसार के दुःखों से मुक्त कर जीव को उस पार पहुंचा देता है।[1] अतः पारद की शक्ति अलौकिक है।

१— ससारस्य पर पारदत्तो सो पारद स्मृत

रसेश्वर अनुयायी जिस प्रकार पारद को शंकर का वीर्य मानते हैं, उसी प्रकार अभ्रक को पार्वती का रज मानते हैं। इन दोनों के मिश्रण से जो भस्म तैयार होता है, उसका आयुर्वेद में अत्यन्त महत्व है– वह प्राणियों के शरीर को दिव्य बनाने में सर्वरूपेण समर्थ है।

पारे की तीन अवस्थायें मानी जाती हैं।[1] पारद का उपयोग मानव के परम कल्याण का साधन हैं, यथा–

मूर्छितो हरति व्याधीन् मृतो जीवयति स्वयम्।
वृद्ध ए वे र चरतां कुर्यात् रसो वायुश्च भैरवि ॥

पारद से साधना के विकास क्रम के तीन सोपान बतलाए गए हैं :–

१– पारद प्रयोग से दिव्य शरीर प्राप्त करना।

२– योगाभ्यास करना।

३– आत्मा का दर्शन करना।

रसेश्वर समर्थक पारद को ईश्वर मानते हैं। पारद का नाम 'रस' है और 'रस' ईश्वर है। इस सन्दर्भ में वे तैत्तिरीय उपनिषद का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।[2] रस को सिद्ध करने हेतु स्वेदन, मर्दन आदि अठारह संस्कारों

१– (१) मूर्छित (२) मृत (३) वृद्ध। (१) जिस पारे में घनता और चचलता नहीं होती है, वह मूर्छित अवस्था कहलाती है। (२) जिसमें आद्रता, गौरव, चपलता विद्यमान नहीं रहती मृत अवस्था कहलाती है। (३) तीसरी अवस्था वृद्ध कहलाती है।

२– रसो वै सः रसं ह्येवाय लब्ध्वानंदी भवति। –तैतिरीय उ० २।७।१
रसेश्वर समर्थकों का कहना है कि इसी रस को उपनिषद् ब्रह्म का प्रतीत बतलाता है जिसे प्राप्त कर लेने पर साधक वस्तुयें आनन्द का अधिकारी बन जाता है अत तैतिरीय उपनिषद् का संकेत आत्मानन्द की ओर है।

५ | शैव योग

'युज्' धातु के उपरान्त करण तथा भाव वाच्य में घञ् प्रत्यय के युक्त कर देने से 'योग' शब्द निष्पन्न होता है। यथार्थतः 'युज्' धातु का अभिप्राय है– समाधि। 'समाधि' शब्द का तात्पर्य है– भगवान् के साथ जुड़ जाना या संयुक्त हो जाना। इस प्रकार समग्रतः ब्रह्म और जीव जीव का एकत्व ही योग है। जीव-अस्तित्व का भगवतस्वरुप हो जाना, परिपूर्ण एकत्व प्राप्त कर लेना तथा द्वैत का अद्वैत रूप बन जाना ही योग है।

विद्वानों ने 'योग' को अनेक अर्थों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। किसी ने आत्मा-परमात्मा की एकता की अवस्था को योग कहा है, किसी ने लक्ष्य में मन के विलय को योग बताया है।[1]

योग शब्द के अनेक अर्थ हैं। पर सर्व सम्मत अर्थ-चैतन्य के विभिन्न स्तरों का खुलना ही है। योग का उद्देश्य, आत्मा की विज्ञानमय स्थिति पर पड़े हुये आवरण को हटाना है। चित्त को अधिकाधिक चिन्मय बनाना और विश्व जीवन के जगमग प्राण स्वरुप को अपने में अनुभव करना है।

योग विद्या अत्यन्त प्राचीन है। इसके प्रवर्त्तक 'आदिनाथ शिव' माने गए हैं। इसका प्रतिपादन संहिता, आरण्यक तथा उपनिषदों में मिलता है। छांदोग्य[2], वृहदारण्यक[3], कठ[4], श्वेताश्वतर[5] उपनिषदों आदि में योग की विशिष्ट प्रणाली का संकेत भी मिलता है।

१– योगश्चित्तवृत्ति निरोध– –पातंजलि योगसूत्र, पृ० १२९

२– छाँदोग्य उपनिषद् ८।६

३– वृहदारण्यक उपनिषद ४।३।२०

४– कठोपनिषद्–२।१।१२, २।३।१०–२१

५– श्वेताश्वतर उपनिषद् २।७।१५

के द्वारा रस सिद्ध कवीश्वरों का शरीर जरा और मरण दोनों विकृतियों से रहित होकर दिव्यता को प्राप्त कर जाता है।

यथा—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्॥

—भर्तृहरि।

इन्हीं अलौकिक उपयोगिता के कारण रस को ईश्वर की संज्ञा से नामित किया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जीवन्मुक्ति ही वास्तव में मुक्ति है।

कुछ विद्वान तो इसे शिव के स्वरूप का विवेचन करने वाले दर्शनों में स्थान देना उचित नहीं समझते, फिर भी रसेश्वर सम्प्रदाय एवं उसमें निहित दर्शन अपने में विशिष्ट है।

निष्कर्ष :—

शैव सम्प्रदायों की ऐतिहासिक विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि सैद्धान्तिक मान्यताओं के भेद से अनेक शैव सम्प्रदायों की तात्विक एकता बाधित नहीं होती। अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि सम्प्रदायों की भिन्नता भी केवल मौलिक एकता को प्रमाणित करती है। तामिल प्रान्त के शैवगण जो 'शैवसिद्धान्ती' नाम से विख्यात हैं, द्वैतवादी हैं। वीर शैव शक्ति विशिष्टाद्वैत के उपासक हैं। गुजरात और राजपूताने के पाशुपत द्वैतवादी है। इन सबसे दार्शनिक दृष्टि से भिन्नता रखने वाला काश्मीर का त्रिक् या प्रत्यभिज्ञादर्शन है जो पूर्ण-रूपेण अद्वैतवादी है। इन सबकी पृष्ठ भूमि में मौलिक एकता व्याप्त है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार एक ही अद्वय परमेश्वर परमतत्व है जो शिव तथा शक्ति का कामेश्वर-कामेश्वरी का सामरस्य है। चैतन्यस्वरूप आत्मा जगत् के सभी पदार्थों में अनुस्यूत है। परमशिव चैतन्य आत्मा का ही अन्य नाम है। परमेश्वर विश्वात्मक रूप से प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है किन्तु विश्वोत्तीर्ण रूप में सब पदार्थों का अतिक्रमण भी करता है परमेश्वर के ये दोनों रूप अन्योन्याश्रित

है। अतएव पार्थक्य का अनुमान करना उचित नहीं है । परमेश्वर में सृष्टि और सृष्टि में परमेश्वर है । उनमें कारण कार्य सम्बन्ध है । कारण रूप में भी परमेश्वर और कार्य-जगत् रूप में भी परमेश्वर ही है । यहीं परमेश्वरता है ।

परमेश्वर के अभेद सम्बन्ध को अनेक प्रकार से प्रतिपादित किया गया है । अभेदाभिव्यक्ति का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि जैसे नाली द्वारा तालाब और खेत के जल का एकीभाव होता है, उसी प्रकार विषयावच्छिन्न चैतन्य और अन्तः करणावच्छिन्न चैतन्य का वृत्ति द्वारा एकी भाग होता है । इस अभेदाभि-व्यक्ति में उपाधि के रहने पर बिम्ब और प्रतिबिम्ब में भेद के अस्तित्व को माना गया है । बिम्बोपेत ब्रह्म एवं बिम्बोपलक्षित जीव चैतन्य है, वृत्ति के होने पर 'विषय' तथा 'विषयी' (चैतन्य) का अभेद ही अभेदाभिव्यक्ति है । विषय का अधिष्ठानभूत- बिम्बस्वरुप- ब्रह्मचैतन्य साक्षात् आध्यात्मिक सम्बन्ध होने पर विषय का प्रकाशक होता है अतः बिम्बत्वविशिष्ट- चैतन्य का, बिम्ब रूप से प्रतिबिम्बत्वविशिष्ट- चैतन्य रूप जीव के साथ, भेद होने पर भी बिम्बत्व और प्रतिबिम्बरूप एकीभाव है । इस प्रकार इस दर्शन के अनुसार जीव और ब्रह्म का बिम्ब प्रतिबिम्बभाव से नित्य सम्बन्ध माना गया है ।

वीर शैव मत में भी परमशिव की सत्ता नित्य, सर्वस्य तंत्र, सृष्टि, स्थिति लय से परे, अवर्णनीय, अनिर्वचनीय चैतन्य रूप में स्वीकार की गयी है । वे अखिल जगत् के कर्ता, भर्ता, हर्ता पंच ब्रह्मरूप हैं । उनकी अलौकिक व्यापकता का विश्लेषण करते समय शक्ति के महत्वपूर्ण स्थान के कारण, वीरशैव मत शक्ति विशिष्टाद्वैतवादी कहलाता है । इस मत की मूल धारणा के अनुसार ब्रह्म अपनी इच्छा से ईश्वर और व्यक्ति गत आत्मा में विभक्त होता है । यहाँ ब्रह्म के छः विभिन्न स्वरुप माने गए हैं-पूर्ण ब्रह्म, पराशक्ति से निर्माण करने वाला स्वरुप, वस्तु जगत् से भिन्न स्वरुप, भौतिक स्वरुप, ज्ञान स्वरुप और छठा आत्म- प्रबोधक तत्व प्रदान करने वाला स्वरुप । यह विश्व शिव की इच्छा शक्ति के उद्वेलित होने पर, समुद्र में लहर और बुदबुदों के समान, अभि-व्यक्त होता है । जीव शिव का ही अंश है । यहां जीव और ब्रह्म में द्वैताद्वैत-वादी सम्बन्ध स्वीकार किया गया है ।

शैव सिद्धांत मत में जीव और परशिव में अद्वैत की कल्पना का आधार भिन्न है। इसके अनुसार जीव अनन्त है और शिव से भिन्न है, प्रत्येक का अपना अलग अलग अस्तित्व है। सूर्य के उदय होने पर आकाश के तारे दिखलाई नहीं पड़ते। उनका प्रकाश सूर्य के प्रकाश में लीन हो जाता है, किन्तु नक्षत्र अपने अस्तित्व को बनाए रखता है। इस प्रकार इस दर्शन के अनुसार जीव और परमात्मा अपना अलग अलग अस्तित्व बनाए रखते हैं।

शैवमत में परमेश्वर समस्त सृष्टि के सृजन का कारण है। सृष्टि के सृजन और उससे सम्बन्धित अन्य शक्तियों का संचालन शिव ही करते है। माया प्रकृति का मुख्य स्वरूप है और महेश्वर मायिन् हैं। महेश्वर पूर्ण स्वतन्त्र है। 'अ' उ, म' आदि ब्रह्मा, विष्णु और कालरुद्र के प्रतीक वर्ण महेश्वर में विलीन होते हैं। इन तीनो का तीनों का मिश्रित रूप ही महेश्वर है। शिव के अतिरिक्त ब्रह्मत्व का अधिकारी और कोई नहीं है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी यही सिद्ध किया गया है। अतः ब्रह्म शब्द शिव का पर्यायवाची है। दार्शनिक दृष्टि से शिव अपरिवर्तनशील चेतन है, शक्ति उनका परिवर्तनशील रूप है। वही बुद्धि व वस्तु रूप में दिखलाई पड़ती है। इस प्रकार परिवर्तनशीलता में अपरिवर्तनशीलता मानी है। ब्रह्म रूप से शिव परिवर्तनरहित और शक्ति के सम्बन्ध के कारण परिवर्तनशील हैं।

५ | शैव योग

'युज्' धातु के उपरान्त करण तथा भाव वाच्य में घञ् प्रत्यय के युक्त कर देने से 'योग' शब्द निष्पन्न होता है। यथार्थत: 'युज्' धातु का अभिप्राय है– समाधि। 'समाधि' शब्द का तात्पर्य है– भगवान् के साथ जुड़ जाना या संयुक्त हो जाना। इस प्रकार समग्रत: ब्रह्म और जीव जीव का एकत्व ही योग है। जीव-अस्तित्व का भगवतस्वरुप हो जाना, परिपूर्ण एकत्व प्राप्त कर लेना तथा द्वैत का अद्वैत रुप बन जाना ही योग है।

विद्वानों ने 'योग' को अनेक अर्थों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। किसी ने आत्मा–परमात्मा की एकता की अवस्था को योग कहा है, किसी ने लक्ष्य में मन के विलय को योग बताया है।[1]

योग शब्द के अनेक अर्थ हैं। पर सर्व सम्मत अर्थ-चैतन्य के विभिन्न स्तरों का खुलना ही है। योग का उद्देश्य, आत्मा की विज्ञानमय स्थिति पर पड़े हुये आवरण को हटाना है। चित्त को अधिकाधिक चिन्मय बनाना और विश्व जीवन के जगमग प्राण स्वरुप को अपने में अनुभव करना है।

योग विद्या अत्यन्त प्राचीन है। इसके प्रवर्त्तक 'आदिनाथ शिव' माने गए हैं। इसका प्रतिपादन संहिता, आरण्यक तथा उपनिषदों में मिलता है। छांदोग्य[2], वृहदारण्यक[3], कठ[4], श्वेताश्वतर[5] उपनिषदों आदि में योग की विशिष्ट प्रणाली का संकेत भी मिलता है।

१– योगश्चित्तवृत्ति निरोध– –पांतजलि योगसूत्र, पृ० १२९

२– छांदोग्य उपनिषद् ८।६

३– वृहदारण्यक उपनिषद ४।३।२०

४– कठोपनिषद्–१।१।१२, २।३।१०–२१

५– श्वेताश्वतर उपनिषद् २।७।१५

लय योग में साधक चलते, बैठते, खाते समय ईश्वर का ध्यान करता है, अतः इसमें ध्यान का विशेष महत्व है। मन का यह लय नाद, श्रवण या ज्योति दर्शन से सम्भव है।[1] लय योग में योगी शांभवी मुद्रा को साधते हुए, ध्यान को अन्तर्लक्ष्य पर स्थिर रखता है। इसमें सुषुम्ना नाड़ी का आधार लिया जाता है। साधक ध्यान में केन्द्रीभूत होकर विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का श्रवण करता है। ध्वनि से एकीभूत मन अनहद नाद में लीन हो जाता है, यही नादलय है। इसको कुण्डलिनी लययोग भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत शरीरस्थ सप्तम चक्र में स्थित 'सहस्त्रदल कमल' में कुण्डलिनी को ले जाकर सदाशिव के साथ मिला दिया जाता है। अतः शिव में शक्ति का लयीकरण ही लय योग है। मन का लय होने पर उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है।

३- हठयोग :-

हठयोग के प्रथम आचार्य शिव बताए गए हैं तथा मानवीय आचार्यों में मार्कण्डेय सर्वोपरि हैं। मध्य युग में मत्स्येन्द्र नाथ, गोरखनाथ आदि सन्तों ने मार्कण्डेय द्वारा प्रवर्तित हठयोग को पुनर्जीवित किया।

हठयोग दो शब्दों से मिलकर निष्पन्न हुआ है। 'हठ' + 'योग' → हठयोग। 'ह' वर्ण सूर्य तथा 'ठ' वर्ण 'चन्द्र' का वाचक है। अतः हठ योग वह साधना है जिसमें सूर्य तथा चन्द्र का मिलान है या दूसरे शब्दों में इसकी व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं कि हठ योग सूर्य-चन्द्र की साधना है। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का परिणाम है, ऐसा हठयोग में माना गया है। अतः अनेक स्थूल साधनों से सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालकर चित्तवृति के निरोध पर विचार किया जाता है। 'चन्द्र' और सूर्य क्रमशः प्राण तथा अपान के वाचक के रूप में हठयोग प्रदीपिका में बतलाए गए हैं।[2] इन दोनों का योग अर्थात् प्राणायाम द्वारा वायु का निरोध ही हठयोग है।

'सूर्य' इड़ा नाड़ी को कहा गया है तथा 'चन्द्र' को 'पिंगला'। अतएव इन दोनों का अवरोध कर सुषुम्ना मार्ग से वायु को संचरित करना हठयोग बतलाया गया है।

१- अंतःस्थं भ्रामरीनादं श्रुत्वा तत्र मनोनयेत्।
समाधिजार्यते तत्र आनन्दः सोऽहमित्यतः।।
-घेरण्ड संहिता, पृ० ९४।

२- एतेन हठशब्दवाच्ययोः सूर्यचन्द्राख्ययोः प्राणापानयो-
रैक्यलक्षणः प्राणायामो हठयोग इति हठयोगस्य लक्षणं सिद्धम्।
हठयोग प्रदीपिका १ २ (टीका)।

इससे प्रकाश होता है तथा प्रकाश का व्यक्ति रूप ही महाबिन्दु है, यही इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया भेद से तीन प्रकार का माना गया है जिसे योगियों ने ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश कहा है। यह नाद अनाहत भाव से ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, इसका प्रकाश जब व्यक्ति में होता है तब यह नाद तथा बिन्दु कहलाता है। ब्रह्मरन्ध्र में ही परम तत्व की खोज में यह अन्दर सुनाई देता है, यही ब्रह्म की अनुभूति कही गई है, परम तत्व की प्राप्ति है तथा शिव का साक्षात्कार है।[1]

इन्द्रिय निग्रह के द्वारा बिन्दु रक्षा तथा प्राण साधना में आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार तथा नाड़ी साधना द्वारा षट् चक्र आदि के उपरान्त साधक 'मनसाधना' में लीन हो जाता है।

४— राजयोग :

हठयोग साधना की समाप्ति पर राजयोग का प्रारम्भ होता है। हठयोग को राजयोग की भूमिका माना गया है। मन साधना ही राजयोग है। राजयोग का मुख्य लक्ष्य चित्तवृत्तियों को वश में करना अथवा निरोध करना है। अतएव चित्त की एकाग्रता ही राजयोग है। इस निष्पत्ति अवस्था में चित्त एकीभूत हो जाता है अर्थात् विषय एवं विषयी में अभेदत्व स्थापित हो जाता है।[2]

१— डा० विमलकुमार जैन, सूफीमत तथा हिन्दी साहित्य,
—पृष्ठ - १०५

२— एकीभूतं तथ- चित्तं राजयोगाभिधानकम्
सृष्टिसंहारकर्तासो योगीश्वर समो भवेत्।
हठयोग प्रदीपिका पृष्ठ ४ ७७

शैव योग—

शैव सम्प्रदाय के वे अनुयायी जो अपनी साधना में योगाभ्यास को महत्व देते हुए लक्ष्य पर पहुंचे हैं अर्थात् मन्त्र योग, लययोग, हठयोग द्वारा राजयोग की प्राप्ति करते हुए शिवपद में लय होकर परमगति को प्राप्त करते हैं, शैव योगी कहलाते हैं।

शैव साधना में योग का महत्व है। शिव योगी अष्टांग योग का साधन करते हुए अपने हृदय में परमात्मा शिव का अनुसंधान करता है। जिस प्रकार भ्रमरी के ध्यान से कीट भ्रमरी बन जाता है, उसी प्रकार शिव योगी शिव के ध्यान में लीन होकर शिवत्व को प्राप्त हो जाता है। ये स्थिति योगबल से ही सम्भव है। पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि शिव पद में लय होती है, तभी परमगति प्राप्त होती है। शैव योग में मन्त्रयोग, लययोग तथा हठयोग के द्वारा राजयोग की प्राप्ति चरम लक्ष्य है।

अतः राजयोग प्राप्त करने के लिए हठयोग एक साधन है। राजयोग एवं शैव योग में पारमार्थिक दृष्टि से कोई भेद नहीं है।[1] शैवागमों में शैव योग इस प्रकार पारिभाषित किया गया है— 'महा कुण्डलिनी में वृत्तिज्ञान को लय, कर, सर्वतोमुख व्याप्त शिव तत्वाभि व्यक्ति ही शैवयोग है।

शिवपद की प्राप्ति हेतु पंचाक्षर मन्त्र, आत्म-निग्रह और अष्टांग योग आवश्यक है। राजयोग की प्राप्ति हठयोग के अभाव में सम्भव नहीं है। उसके द्वारा मनः शुद्धि होने पर मन्त्रयोग द्वारा लयावस्था को प्राप्त करने के लिए नाद श्रेष्ठ माना गया है। मन और प्राण को लय करने में नाद के समान कोई सरल साधन नही है। नाद ही ओंकार है। यही शब्द ब्रह्म है। इसी से 'प्रणव' 'पंचाक्षर मन्त्र' उद्भूत हुआ। इसी लिए मन्त्र साधना का महत्व शैवयोग में अत्यधिक है।

१— न भेदः शिवयोगस्य राजयोगस्य तत्वतः।

—शिवयोग प्रदीपिका पृ० ४।

शैव योग की तीन भूमिकायें प्रचलित हैं। इन्हीं भूमिकाओं के माध्यम से शैव साधक शिवत्व को प्राप्त करते हुए परमपद तक पहुचता है। ये भूमिकायें इस प्रकार हैं– (१) कायिक (२) मानसिक (३) आध्यात्मिक।

१– कायिक–

इस भूमिका में साधक शारीरिक साधना आसन, मुद्रा, प्राणायाम् द्वारा हठात् चित्तवृत्ति का नियंत्रण करता है। यही योग की प्रथम भूमि है, जिसके द्वारा इन्द्रिय निग्रह और प्राण साधना का क्षेत्र परिपुष्ट होने पर योग मार्ग में अग्रसर होना है।

२– मानसिक–

योग के स्थूल विधान से अथवा शरीर सम्बन्धी साधनाओं से निवृत्त होकर धारण, ध्यान और समाधि की ओर उन्मुख होना ही शैव योग की मानसिक भूमिका है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस भूमिका में शरीर की सतह से उठकर भावनाओं के क्षेत्र में साधक पहुंच जाता है और आसन, प्राणायाम के माध्यम के बिना साधक मानसिक आनन्द की अनुभूति करने लगता है। इसका सम्बन्ध चित्त की विशुद्धता एवं एकाग्रता से होता है।

१— न भेद: शिवयोग य राजयोगस्य तत्वत:।

–शिवयोग प्रदीपिका, पृ०४।

३— आध्यात्मिक–

धारणा, ध्यान एवं समाधि के दृढ़ होने पर सम्प्रज्ञात योग सिद्ध हो हो जाता है। इस अवस्था में साधक जीवन्मुक्त दशा को प्राप्त करता है। साधक सांसारिक सत्ता, द्वैत भाव आदि परित्याग कर, परमसत्ता में अद्वैत भाव में लीन हो जाता है। कुंडलिनी के जागरण पर ब्रह्मरंध्र में अनहदनाद का श्रवण करता हुआ साधक दिव्य पवित्रता तथा ब्रह्माद्वैत की प्राप्ति करता है। यही अनुभूति का लोक है इसे सुन्यमहल, गगन महल, गगन अटारी, ध्रुव मन्दिर आदि नाम से अभिहित किया गया है।

योग की आध्यात्मिक भूमिका पर विचरण करता हुआ योगी, इस लोक की दृश्यावली का अनुभव तथा अलौकिक आनन्द के आस्वादन में लीन रहता है। त्रिवेणी तथा वाराणसी में स्नान करता हुआ भंवर गुफा में अमृत का पान करता है। अमृत पान के उपरान्त तत्व ज्ञान का अनुभुति साधक को होती है, आध्यात्मिक धरातल का पृष्ठभूमि अथवा मूलाधार हैं। यहां योगी अलिप्त भाव से सांसारिक क्रियाओं में कार्यरत रहता है। अन्तःकरण में चैतन्य आत्मा का आभास आत्माभिन्न पदार्थ को प्रकाशित करता है। अतः प्रपंच में शुद्ध तत्व की भावना से बंधनात्मक शक्ति नष्ट होकर योगी अपने अन्दर दृश्य, दर्शन और दृष्टा रूप में देखता हुआ 'मैं विश्वात्मा शिव ही हूं' की भावना से लोकानन्द में समाधि सुख को प्राप्त करता है।

गुरु का महत्व शैव योग की अपनी विशेषता है। शैव योग में शिव ही वास्तविक गुरु है। साधक को साधना की प्रथमावस्था में लौकिक गुरु की अपेक्षा होती है। चित्तवृत्तियों के निरोध होने पर आत्मस्थ गुरु शिव ही उपदेशक, मार्ग निर्देशक एवं अज्ञान रूपी तम के विनाशक हैं। शिव-गुरु में अद्वैत संबंध स्थापित करना ही शैव योग की चरम परिणति शैव ग्रन्थों में इस तत्व का निरुपण विस्तार से हुआ है। तंत्रों में भी गुरु-पद सर्वोच्च बतलाया गया है। निर्वाण तंत्र के अनुसार शिव गुरु है, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु एवं परात्परगुरु शिव के अंश हैं।

परम गुरू शिव का निवास सहस्त्र दल कमल कर्णिका में है।[1] सुषुम्ना द्वारा विभिन्न चक्रों का भेदन कर, चन्द्र मण्डल से स्त्रवित सुधारस पान आनन्दोन्मत हो, इनके ध्यान से जीव अमरत्व प्राप्त करता है। दैविक गुरू शिव के समान शिवत्व का ज्ञान कराने वाले साँसारिक गुरू का महत्व कम नहीं हैं। जिस प्रकार भक्ति के क्षेत्र में गुरू का अत्यधिक महत्व है उसी प्रकार हठ की क्रिया, प्रक्रिया, मँत्र योग के मन्त्र, लययोग या ध्यान योग अथवा कुंडलिनी योग के ध्यान आदि का ज्ञान गुरू के प्राप्त दीक्षा द्वारा सम्भव है। अतः शैव योग में दैविक एवं साँसारिक गुरू का अपना विशिष्ट महत्व है।

इस प्रकार शैव योग साधना हठयोग से प्रारम्भ होकर क्रमशः मंत्रयोग, लययोग द्वारा राजयोग अथवा शैवयोग की आध्यात्मिक भूमिका को प्राप्त करती है। मंत्रयोग की मंत्रसाधना का इसमें विशिष्ट महत्व है तथा लय योग की नाद बिन्दु साधना अथवा शिव शक्ति की सम्मिलित अवस्था का प्रति-योग शैवयोग में दिखाई पड़ता है। इन साधनाओं के उपरान्त ही राजयोग की अवस्था में योगी सर्व आत्मदर्शन करता हुआ बन्धन और मोक्ष से रहित हो सद्युक्त अवस्था प्राप्त कर निरतिशय सुख को प्राप्त करता है।

समग्र रूप से शैवयोग पर अध्ययन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शैवयोग की तीन प्रमुख विशेषतायें है —

१– शिव की स्थिति,

२– प्रक्रिया

३– अनुभूति।

---

१ शिरः पद्मे महादेवस्तथैव परमो गुरूः
तत्समो नास्ति देवेशिपूज्यो हि भुवनत्रये
तद्दर्शं चिन्तयेद्देवि वाह्, में गुरू चतुष्टयम् ॥

—भैरव तन्त्र।

शैवों के अनुसार शिव की स्थिति ब्रह्मरंध्र में मानी गई है जिसे 'शिवलोक' कहा गया। शैव योगी योगाभ्यास से हृदय में स्थित परमात्मा शिव का अनुसंधान करता है। उसका साम्य शिवशक्ति मिलन है। इसके लिए साधक कुंडलिनी शक्ति को जागृत कर, उसे ब्रह्मरंध्र में लय करता है। वहीं शिव और शक्ति के सम्मिलन के उपरान्त योगी आनन्द अनुभव करता है। शैवयोग में कुंडलिनी जाग्रत करने की प्रक्रिया विशिष्ट है, जिसमें आसन प्राणायाम, मुद्रा, प्रत्याहार, नाड़ी विचार, षट् चक्र भेदन आदि यौगिक प्रक्रियाओं का महत्व है। योग की विभिन्न प्रक्रियाओं पर आधृत शैव योग की परम्परा, निर्बाध से रूप से संप्रति प्रवाहमान है। शैवयोग पूर्ण रूपेण मौलिक रूप से पंतजलि योग दर्शन से प्रभावित है।

६ | शैव भक्ति

भक्ति का विवेचन उसके तीनों पक्ष पर निर्भर है–

(क) भक्त (ख) आराध्य (ग) आराधन

[क] शैव भक्त–

'शैव' शब्द की व्युत्पत्ति शिव में 'अण' प्रत्यय लगने से मानी गई हैं। 'शैव' शब्द से 'शिवस्य इदम् शैवम्' [1] तथा 'शिवस्य यम् शैवः' अर्थात शिव सम्बन्धी वस्तु तथा शिव का भक्त और उपासक अर्थ में लिया जाता है। शैव शब्द विशेषण है जो अपने विशेष्य के साथ शिव परकता व्यक्त करता है। शिव की उपासना करने वाले, शिव तत्व को समझने वाले, शिव से प्रेम रखने वाले, शिव की स्तुति करने वाले, शिव की पूजा करने वाले शैव भक्त की कोटि में रक्खे जा सकते हैं।

शिव पुराण में शैव भक्तों के आठ लक्षण बतलाये गये हैं- शिव भक्तों के प्रति स्नेह, शिव पूजा का अनुमोदन, शिव पूजन में प्रवृत्ति, शारीरिक चेष्टाएं शिव कथा श्रवण, कथा सुनते समय स्वर, नेत्रों और अंगों में विकार

१ तस्येदम् पाणिनि सूत्र १

की उत्पत्ति, बारम्बार स्मरण और शिवाश्रित जीवन निर्वाह। उनसे युक्त मलेच्छ भी सन्यासी और पंडित है।[२]

एक आदर्श भक्त में जो गुण श्रद्धा, विश्वास, अहिंसा, सत्य, शौच, दया आदि पाये जाते हैं। इन्हीं गुणों से युक्त शैव भक्त भी उपलब्ध होते हैं।

शैव भक्त अपने उपास्य (शिव) की उपासना में तल्लीन होकर परमानन्द की अनुभूति करता है। वह अपने उपास्य के अनन्य प्रेम में उन्हीं के अनुरुप वेशभूषा धारण करता है, आचार-विचार से उनके प्रति अपनी निष्ठा बनाता है। उपास्य के प्रति अनन्य अनुराग ही शैव भक्त का चरम लक्ष्य है। साधना के भेद से उपासकों के विभिन्न वर्ग बने। शिव का योग परक उपासना करने वाले उपासक साधु और शिव का साकार रूप के उपासक भक्त कहलाए शैव मत के अन्तर्गत संत साधु और भक्त शब्द का प्रयोग उपासक के अर्थ में किया गया है।

शैव भक्तों के भेद-

शैवमत के पाशुपत शैव सिद्धान्ती, लिंगायत, कश्मीरी शैव तथा रसेश्वर शैव आदि संप्रदाय प्रचलित हैं। इन संप्रदायों में शैवोपासकों के भेद दृष्टिगोचर होते हैं, जो इस प्रकार है-

पाशुपत- पाशुपत, कालामुख और कापालिक सम्प्रदाय गोरखनाथ द्वारा विकसित सम्प्रदाय में मिल गए जो कालान्तर में बारह शाखाओं में विभक्त हो गए— सतनाथी, धर्मनाथी रामपंथी, नटेश्वरी कन्दड़ी कपिलानी, वैरागी मानमाथी, आई पन्थी पागलपन्थी, धजपंथी और गंगानाथी नाम से प्रचलित हैं। इन सभी गोरखपंथियो को

२- सिवपुराण वायवीय संहिता अध्याय १०

बारहपंथी नाम से अभिहित कर सकते हैं– हाडी मरग, कापिकनाथी, पापल-नाथी, उदय नाथी, फील नाथी, चपंट नाथी, गैनी पापंथी, निरंजन नाथी, अमर नाथी, कुंभीदासी, तारकनाथी, आपापंथी, मृगनाथी आदि सम्प्रदायों मे शैवोपासक देखे जा सकते हैं। पुरी के दंडा धारी योगी लकुलीश शैव हैं। मतनाथी शाखा के गोरावपंथी कनफटा योगियों का शैव पंथों में प्रमुख स्थान है– व अपने को पाशुपत कहते हैं। धर्मनाथी और लक्ष्मण नामी के अनुयायी भी शैव हैं।

लक्ष्मण नामी– (१) नटेश्वरी, (२ दरिया – नागनाथी में भी शैवोपासक हैं।

औघड़ या सरभंग सम्प्रदाय के साधु भी शैव हैं - शैव साधुओं का एक विशिष्ट सम्प्रदाय – आकास मुखी सुखरास, रुखास, उखरास, नरवी तथा नागा भी हैं।

शंकर भी चार प्रमुख शैव सम्प्रदायों के प्रवर्तक हैं। इनके दस शिष्य है जो दसनामी कहलाते हैं।

लिंगायत

लिंगायत सम्प्रदाय के शैव भक्त जंगम्, शालवंत, बनजारे, पचमशाली, नाम से विख्यात हैं।

कश्मीरी शैव तथा शैवसिद्धान्ती आडम्बर मुक्त होने के कारण इनमें शैवपासकों के भेद नहीं पाए जाते हैं। इनमें ज्ञान, भक्ति और योग समन्वित साधना का ही महत्व है।

शैव भक्तों की भूमिकायें :

काया, मन और आध्यात्मक के आधार पर शैव भक्तों को तीन भूमिकाओं पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है। ये भूमिकायें भक्त को भगवान तक पहुंचाने वाली सीढ़ियाँ हैं। एक के अनन्तर दूसरे सोपान पर अधिष्ठित होता हुआ भक्त भक्ति के चरमोत्कर्ष को प्राप्त होता है। ये भूमिकायें कायिक, मानसिक और आध्यात्मिक कहलाती हैं इनका विवेचन निम्न रूप में प्रस्तुत है

१— शैव भक्तों की कायिका भूमिका :

'कायिक' से तात्पर्य भक्त की वेशभूषा, आभूषण, अन्य चिन्ह आदि से है। इस भूमिका के अन्तर्गत भक्त साधना की एक रूपता में अपने इष्ट के अनुरूप हो जाता है— 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति'।

(i) वस्त्र : प्रत्येक शैव सम्प्रदाय के भक्तों की वेशभूषा, आभूषण और सज्जा आदि अपनी विशेषता है। इनमें समानता इतनी अधिक है कि साधारणतः भिन्नता करना अत्यन्त कठिन है। साधारण रूप से शैवयोगी कमर के चारों ओर एक काली भेड की ऊन से बटी हुई रस्सी को धारण करते हैं और इसी में वे अपना कटिवस्त्र बांधते हैं। कटिवस्त्र के अतिरिक्त शैव वस्त्र के नाम पर शरीर पर कुछ भी धारण नहीं करते हैं। कटिवस्त्र के अतिरिक्त शैव वस्त्र के नाम पर शरीर पर कुछ भी धारण नही करते हैं। कटिवस्त्र को 'अरबट्ट लंगोट' कहा जाता है। रस्सी को 'हाल मतंग' कहते हैं। कुछ योगी गेरुआ वस्त्र जो चोले का आकार का होता है, धारण करते हैं। कुछ शैवयोगी सफेद वस्त्रों को धारण करते हैं तथा ये सफेद पगड़ी सिर पर बाँधते हैं। आकाश मुखी साधु रंगीन वस्त्रों को धारण करते हैं जबकि सुखरास साधु टोपी तथा घाघरे के तरह का एक वस्त्र पहनते है। सतनाथी सम्प्रदाय के साधु नाना प्रकार के रंग-बिरंगे कपड़े के टुकड़ों से निर्मित टोपी, कोट एवं गुदड़ी धारण करते हैं। नागा शैव साधु वस्त्रादि कुछ भी ग्रहण नहीं करते हैं।

(ii) आभूषण :— शैव योगियों के आभूषण मुख्य रूप से मेखला, शृंगी, अधारी, कर्णमुद्रा, जनेऊ भस्म, रुद्राक्ष, खप्पर, दण्ड तथा तिलक आदि है।

(iii) आचार व्यवहार :— उपासना एवं आचार में अन्योनाश्रित सम्बन्ध है इसका संकेत ऋग्वेद तथा उपनिषद् सूत्रों में भी प्राप्त होता है। स्मृतियों में 'आचार' उपासना का ग्राहक तत्व माना गया है। आचार वान उपासक समस्त फलों का प्राप्तकर्त्ता माना जाता है। आचार दो प्रकार के होते हैं (१) आचार व (२) शिष्टाचार

१–साधारण आचार के अन्तर्गत दैनिक कर्म व्यवहारिक नियम, आश्रमिक कर्तव्यों को सुव्यवस्थित करने वाला आचरण सम्मिलित है ।

२–शिष्टाचार का पालन करने वाला धर्मवान, सेवा एवं वेदानुकूल मार्ग का अनुसरण कर्ता होता है अतः सभी आचार की महत्ता अपनी विशिष्टता से युक्त रहती है तथा विशिष्टता का हेतु उपास्य होता है ।

भगवान शिव शैवों के उपास्य हैं । शिव की पूजा का विधान शिव के विभिन्न रूपों में होता है । कनफटे योगियों का सम्प्रदाय लिंग के साथ साँपों की पूजा करता है ।

वाराणसी में नागकूआं है जिसमें टेढ़ी मेढ़ी सीढ़ियाँ हैं, उसके अन्दर तीन फन वाले साँप की प्रतिमा है तथा आँगन में लिंग पर चारो ओर से साँप लिपटा शिव की पूजा नागेश्वर के रूप बनारस में रिखेश्वर के रूप में मध्यप्रदेश व हिमाचल प्रदेश में होती है । शुद्ध शैवों तथा कश्मीरी शैव उपासकों में बाह्यडम्बर नहीं है अतः इनके नैतिक आचार–विचार प्रायः अन्य शैव सम्प्रदायों की भाति है ।

वीर शैव सम्प्रदाय के आचार-विचार कुछ विशेष मान्यताओं पर आधृत है । इस सम्प्रदाय में सामाजिक व धार्मिक जीवन में समानता तथा मठों की स्थापना पर बल अधिक दिया जाता है । यह संप्रदाय वर्ण एवं जाति भेद से परे है । लिंग धारण, शिवभक्ति पर विशेष बल, अहिंसा, सात्विक आहार तथा शारीरिक श्रम पर विशेष बल दिया जाता है । इस मत के आचार्यों ने सत्य, प्रेम व नीति को आधार पर अभिनव समाज की स्थापना करने के लिए प्रयत्न किया और उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है । इस सम्प्रदाय में स्त्री पुरुषों में समानता का अधिकार एवं अन्त्यजों को मन्दिर में प्रवेश की अनुमति दिलाकर धर्म का स्थान खोल दिया । अतः इस सम्प्रदाय का विशेष आकर्षण है-धर्माचार को अधिक महत्वपूर्ण बतलाना । इस सम्प्रदाय के शैवोपासकों ने नीति, शील तथा सदाचार की आवश्यकता पर बल देते हुए बाह्याडम्बरों का तीव्र स्वर में खण्डन किया है तथा मनसा वाचा कर्मणा की पवित्रता पर विशेष महत्व दिया है ।[1]

वीर शैवों के आचार क्षेत्र में जीवात्मा की शुद्धि के लिए अष्टावरण तथा पंचाचार का महत्व है ।

१–डा० हिरण्मय–हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति आँदोलन: तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ९९ १०० ।

गोरखपंथी शैवोपासकों के यहाँ कर्णमुद्रा पहनना आवश्यक है। यदि कर्ण मुद्रा टूट जाये तो योगी कपड़े अथवा सींग की मुद्रा पहनकर भोजन कर सकता है। मुद्रा टूटने पर वह किसी से बात नहीं कर सकता। प्रातः व संध्या की आराधना से पूर्व जनेऊ में बंधा सिंगीनाद बजानाअनिवार्य आचार उनके यहाँ माना जाता है। गोरखपंथी शैवों में आचार को रहनी कहा गया है। इसमें अहिंसा को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है। मादक द्रव्यों का सेवन इनके यहां वर्जित। है अतः इन शैव साधुओं में ब्रह्मचर्य, सदाचार एवं नैतिकता का समावेश कूट-कूट कर भरा रहता है। गोरखपंथी शैवों में दीक्षा विधान को भी एक विशेष विधि पाई जाती है, जिसमें उन्हें थाना जाकर अपने को सिद्ध करना होता है कि वे किसी भी प्रकार के अपराध से सम्बद्ध नहीं है दीक्षा संस्कार के माह विशेष निर्धारित होते हैं। 'पौष', 'माघ' 'फाल्गुन' आदि के महीने इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

इस प्रकार शैवोपासक कायिक भूमि पर विचरण करता हुआ भगवद् भक्ति का आनन्द लाभ प्राप्त करता है। उसका हृदय संसार से विरक्त होकर श्रद्धेय के चरणों में लीन हो जाता है और उसकी बुद्धि स्वतः सत्कर्म की ओर उन्मुख हो जाता है। शुद्धाचरण द्वारा उसका अन्तःकरण आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर, शोक से परे हो जाता है।

२—शैव भक्तों की मानसिक भूमिका:—

धार्मिक, नैतिक, एवं लौकिक आचार-व्यवहार व्यक्तित्व के विकास के साधन हैं। वेशभूषा, खानपान और आचार-विचार से परिपुष्टि व्यक्तित्व है। शैव भक्त की मानसिक भूमिका का अवलम्बन है।

शैवभक्त कायिक भूमिका पर विचरण करता हुआ अनेक प्रकार से भग-वद् भक्ति का आनन्द प्राप्त करता है तत्पश्चात् वह मानसिक और भावनात्मक विकास की ओर अग्रसर होता है। साधक हृदय को भगवद् धाम बनाने हेतु आसक्तियों का परित्याग करता है। तत्पश्चात् वह अखण्ड एवं अनवरत रूप से भगवद् भजन में लीन हो जाता है। प्रेम पूर्वक चिंतन करते हुए वे कारण जो उपासक को भगवद् भजन में बाधक है, उनसे वह विमुख रहता है। वह इस स्थिति में एक मात्र परमेश्वर की शरण चाहता है—

न जानामि योगं जप नैव पूजां नतोऽहंसदासर्वदा शंभुतुभ्यं ।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं, प्रभो आपन्नमीशं शंभो । [1]

यह स्थित ज्ञान के बिना संभव नहीं है । अतः ज्ञानोन्मुख जिज्ञासा ही भक्ति के मधुर रस में परिणत होकर एक पृथक् संसार उपासक के लिए निर्मित करनी पड़ती है ।

३–शैव भक्तों की आध्यात्मिक भूमिका–

आध्यात्मिक भूमिका में उपासक को चितरूपी भ्रमर अचंचल रूप से भगवान के चरण कमलों में लीन रहता है । वह भगवान को छोड़कर कुछ भी नहीं चाहता है। वह कातर कँठ से भगवान में उनके चरणों में प्रेम के इस प्रकार इस भूमिका में उपासक के लिए भगवान का प्रेम पूर्वक चितन व भगवान के गुण उसकी जीवन पद्धति बन जाते हैं । इस प्रकार भक्त की एकमात्र इच्छा भगवान की आपायिनी भक्ति प्राप्त करना है । भक्ति का यही चरम लक्ष्य प्रेम रस का पान करना है । श्रद्धेय के नाम–रूप एवं गुण का स्मरण चितन मनन उपासक के जीवन का ध्येय एवं धर्म बन जाता है । भक्त और भगवान ऐक्यावस्था को प्राप्त होते है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है । कि शैव भक्त अनेक वेशों में, आचरण की अनेक पद्धतियों में शिव की उपासना करते हैं । शैव भक्त केवल शिव की ही उपासना नही करते हैं । वरन् शिव परिवार के सदस्य भी उनके लिये शिव की भांति समाहृत उपास्य है और तो और शिव के आभूषण, वाहन, स्थान आदि भी पूज्य बने ।

आराध्य (भगवान शिव):—

शैवों के उपास्य भगवान शिव हैं शिव सर्वातीत, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और सर्वलोक महेश्वर हैं । शिव का नाम, रूप, गुण आदि भक्तों का एक मात्र आश्रय है ।

१– मानस उत्तर कांड , १०७ । ८

नाम-नामी तक पहुंचने का साधन है। नाम से साध्य के गुण का परिचय प्राप्त होता है और साधक उसी में लीन होकर उसके स्वरूप को प्राप्त हो जाता है—अतः नाम के जप का महत्व निर्धारित करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने नाम को कल्पवृक्ष कहा है।[1] गीता में कहा गया है यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि अर्थात जप यज्ञ स्वयं भगवान है।[2] इस प्रकार नाम का नामी से घनिष्ट संबन्ध है। नामी की महत्ता नाम के आधीन होती है। नाम का सम्बन्ध नामी के कर्म से है। इसी आधार पर शैवभक्तों ने भी अपने उपास्य भगवान शिवको उनके गुण कर्म के आधार पर उनके अनेक नामों का उल्लेख किया है।

शिव और उनके विभिन्न नामों की व्याख्या:—

शिव के नामों पर दृष्टिपात करने पर प्रतीत होता है कि कुछ नाम तो सरल और स्पष्ट हैं जो गुण, रूप, लीला और धाम के आधार पर हैं, परन्तु कुछ ऐसे अस्पष्ट व अटपटे हैं कि उनका सम्बन्ध स्थापित करना कठिन हो जाता है।

महाभारत में शिव के विभिन्न नाम मिलते हैं। यथा—ज्येष्ठभूत, पशुपति, महेश्वर, विश्वरूप, त्रयम्बक, शिव, वृषाकपि, भव, हर, परमेश्वर, नीलकंठ आदि।

१— नाम कांम तरु काल कराला — मानस १।२६।३

२— गीता — १०।२५

नारायणोपनिषद में शिव जी के विभिन्न नामों की स्तुति इस प्रकार की गई है—

शिवाय नमः शिवलिंगाय नमः भवाय नमः भवलिंगाय नमः
शर्वाय नमः शर्व लिंगाय नमः 'बलाय नमः बल प्रथममाथिनमः ।।

शिवपुराण में शिव के अनेक नाम प्रचलित हैं, उनमें से पाँच प्रमुख हैं— ईशान्, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात ।[1] शिव के नामों का इतिहास भी उनकी अनेक क्रीड़ाओं व गुणों का द्योतक है। समस्त जगत् के स्वामी होने के कारण शिव 'ईशान' निदित, कर्म करने वाले को शुद्ध करने के कारण वे 'अघोर' उनकी स्थिति आत्मा में लक्ष्य होने के कारण वे 'तत्पुरुष', विकारों को नष्ट करने के कारण वे 'वामदेव' तथा बालक के समान परम स्वच्छ, शुद्ध और निर्विकार होने के कारण वे 'सद्योजात' कहलाते हैं।

विभिन्न गुणों से युक्त होने के कारण शिव को मृत्युन्जय, त्रिनेत्र, कृत्ति-वासा, गंगाधर पिनाक धारा, कपाला, भोलानाथ, पिनाकधारी, महाभिषक, भूतेश्वर, शम्भु आदि नामों से भी विख्यात हैं।

शिव के अनेक नामों को अमरकोश में इस प्रकार वर्णित किया गया है—

शलिन, ईश्वर, शंकर, मृड, श्री कंठ, शितिकंठ, विरूपाक्ष, धूर्जटि, स्मरहर व्योमकेश, स्थाणु, त्रिपुरान्तक, भावुक, भाविक भव्य, कुशल क्षेम आदि ।[2]

वैदिक एवं उत्तर वैदिक साहित्य में शिव के रूप का वर्णन देखने को मिलता है। शिव के दोनों स्वरूप निराकार एवं साकार भक्तों में प्रिय है।

शिवपुराण गत शिव के निराकार रूप को भी वर्णित किया गया है। शिव का नाम अष्टमूर्ति हैं। अष्टमूर्तियों के नाम इस प्रकार हैं— भव, शर्व, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव तथा ईशान्। ये अष्टमूर्तियाँ क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य तथा चन्द्रमा को अधिष्ठित किये हैं।

१— शिवपुराण शतरुद्रीय संहिता, अध्याय-१
२— —अमरकोश १।१।३०-३४।

निराकार के रूप में शिव को अनादि आनन्द, चिद्रूप, अक्षर, निर्विकार, शब्द रूप, अरूप देशकालादि शून्य, विज्ञानरूप, अवाच्य, अलक्षित आदि कह कर शिवको अनिर्वचनीयता, निर्गुणता एवं निराकारिता का निरूपण किया गया है।[1]

ब्रह्म की पाँच कलायें है– आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक् । इन कलाओं के आधार पर शिव के पाँच रूप प्रचलित हैं। आनन्दमय रूप की मृत्युंजय नाम से उपासना होती है। दक्षिणामूर्ति के द्वारा भगवान शिव की 'विज्ञान कला' की उपासना होती है, विज्ञान बुद्धि का नाम है, इसी से दक्षिणमूर्ति 'वर्णमातृका' पर प्रतिष्ठित की गई हैं। मनोमय कला के अधिष्ठाता के रूप में शिव की उपासना कामेश्वर के रूप में होती है। यह मूर्ति तंत्रों में रक्तवर्ण मानी जाती हैं। पशुपति, नील लोहित आदि नामों से शिव की प्राणमय मूर्ति की उपासना होती है। यह इनकी पंचमुखी मूर्ति है। आत्मा-पशुपति प्राण रूप पाश के द्वारा विकार–रूप पशुओं का निमन्त्रण करता है। पाँचवी कला 'वाक्' 'भूतेश' नाम से उपास्य है। वाक् अन्अन्य और भूत-एक ही अर्थ के बोधक माने गए हैं। भूतेश शिव अष्टमूर्ति माने जाते हैं।[2]

निराकार के अतिरिक्त शिव का साकार रूप भी अधिक प्रचलित हैं। साकार रूप में शिव कल्याणकारी और भयंकर रूप कीकल्पना पौराणिक साहित्य में प्राप्त होती है।

१— मंगलकारी रूप—

शिव अपने भक्तों पर सदैव कृपालु रहते हैं, मंगल हस्त रखते हैं, कभी क्रोध नहीं करते और न हिंसा ही करते हैं। वे सदैव उनके लिए कल्याणकारी सिद्ध होते है। इस लिए वे शिव कहे जाते हैं। शिव वरदाता आशुतोष और दयानिधि हैं। शिव की कल्पना सतत मानव जाति के कल्याणकारी और भक्तानुरूपी देवता के रूप में की गई है। शिव भौतिक जगत के संहारक तथा अध्यात्मिक जगत के जनक एवं रक्षक हैं। इसी कारण मंगलकारी है।

१— (क) यदनादि अनन्तं च परं ब्रह्म चिद्रूपं तदक्षरं निर्विकारं शब्द रूपम्
—शिव दृष्टि– पृष्ठ ३९

(ख) चद्रूपरंबरूपकम् ।– शिव दृष्टि २।३

(ग) देश कालादिशून्यकम् । वही –२।४

(घ) आस्ते विज्ञानरूपत्वे । वही २।६

(ङ) आवच्यात्वेन भवता — अलक्षित स्वरुपया ।
–शिवदृष्टि- २।३३

२ — गिरिधर शर्मा- शिवमहिमा- संक्षिप्त शिव पुराण -कल्याण अंक-पृ०५८०

शिव वस्तुतः परम तपस्वी, भोला भण्डारी एवं अवढ़र दानी देवता के रूप में जाने जाते हैं। शुभार्थक 'शीङ्' धातु के साथ 'वन' प्रत्यय का योग करने से 'शिव' शब्द बनता है। अतः शब्दार्थ की दृष्टि से शिव-शुभ, मंगल और कल्याण के भावों का बोधक हैं। 'शिव' - नित्य, विज्ञानन्द-धन ईश्वर के बोधक है। इसकी व्युत्पत्ति 'वष कान्त' धातु से हुई जिससे यह अभिप्राय निकलता है कि शिव उसे कहते हैं जिसे सब चाहते हैं। अखंड आनन्द की सब लोग इच्छा करते हैं। अतः शिव का अर्थ हुआ- आनन्द, परमकल्याण, परम मंगल। 'श' से आनन्द और 'कर' से करने वाला का अभिप्राय हुआ कल्याणकारी स्वरुप जो आनन्द प्रदान करें वह शिव तथा शंकर हैं।

अमर कोष में शिव शब्द का अर्थ मंगल एवं कल्याणकारी देवता के रूप में किया गया है।[1]

भयावह रूप—

कल्याणकारी रूप के अतिरिक्त शिव का दूसरा रूप भयावह है। इस रूप का पुराणों में रामायण, महाभारत की अपेक्षा अधिक विस्तृत वर्णन है। वे कराल, रुद्र हैं। उनकी जिह्वा और द्रष्टाएं बाहर निकले हुए है, वे सब प्रकार से भीषण हैं।[2] उनके बाण से पशुओं व मनुष्यों दोनों का नाश होता है।[3] संहारक रूप के कारक वे 'चण्ड'[4] 'महाकाल'[5] और 'भैरव'[6] हैं। वे गले में नर मुंड माला धारी होने के कारण कपालेश्वर हैं।[7]

१- शवः श्रेयासं शिवं भद्र कल्याण मंगलं शुभम्। ७।४६।१

२- मत्स्यपुराण, ४७।१२७, अग्निपुराण ३२४।१६.३

३- ऋग्वेद२।३३।१०, ७।४६।१

४- मत्स्य पुराण-१५२।१०

५- ब्रह्म पुराण ४३।६६

६- अग्निपुराण ७६।५

७- वायु पुराग २४।१४० बराह पराण २५।२६, ब्रह्मपुराण ३७।७।

श्मशान में भूत- पिशाच आदि अपने अनुचरों के साथ कपाल और भस्म धारण किए हुए है अतः वे 'निशाचर' है ।[1] वस्त्रविहीन होने के कारण 'दिगम्बर' हैं ।[2]

मृतमांस और अयोग्य भक्षक और स्वभाव से निर्दयी हैं इसी कारण शिव को 'यक्षपति' भी कहा गया है ।[3] रुद्र को 'दिवोवराह, के नाम से अभिहित किया गया है जिसका अर्थ आकाश का वराह् । काले बादलों से जिस तरह श्वेत दाँत चमकते है, उसी तरह काले बादलों से श्वेत विद्युत की धारा प्रवाहित होती है । इसलिए उन्हें 'दिवो वराह' की संज्ञा दी गयी है ।[4]

वेदोत्तर काल में त्रिमूर्ति के रुप में ब्रह्मा, विष्णु महेश की कल्पना की गई तो शिव को विश्व के संहारक का पद आवंटित किया गया । उनका यह संहारक रूप बहुत ही उग्र एवं भयंकर है । शिव को उग्ररूप में क्रूर, भयावह, विनाशकारी देवता माना गया है ।

१- वायु पुराण- १०।४६, सौर पुराण ४१।५३

२- मतस्यपुराण १५५।२३, सौर पुराण- ४१।९६, १।२७।१०

३- वायु पुराण- २४।१०७, मत्स्य पुराण- १०८।९-१०

४ ऋग्वेद १ ११४ ५

शिव के बारह ज्योतिर्लिंग अत्यधिक प्रसिद्ध हैं जिनका सम्बन्ध नामों से हैं- ओंकारेश्वर, केदारनाथ, घु्श्मेश्वर, त्र्यम्बकेश्वर, नागेश्वर, मल्लिकार्जुन, भीम शंकर, महाकालेश्वर, रामेश्वर विश्वेश्वर, वैद्यनाथ तथा सोमनाथ ।[1]

कुछ नाम उनके तीर्थों से संबंधित हैं- कैलास, हरिहर, वैद्यनाथ, सोमनाथ काशी, केदार, सेतुबंध, वैजनाथ, वेंकट, स्थानेश्वर, वटेश्वर, कामता, तारकेश्वर आदि ।

शिव पर्वत पर निवास करते हैं । अतएव कुछ नाम पर्वत के पर्यायवाची शब्द है जैसे–गिरि, पर्वत, शैल तुंग, गिरिशान्त, गिरित्र गिरीश, गिरिचर तथा गिरिशयु ।

कुछ नाम शिव सम्बन्धी घटनाओं और परिस्थितियों पर भी आधारित है जैसे योगेश्वर, विश्वविमर्दन, त्रुतिनाथ, भोला, आशुतोष, गुप्त-नाथ गोकर्ण नीलकंठ, मूकेश्वर, रंगेश्वर, बटुक आदि ।

शिव भक्ति में शिव परिवार का महत्व–

शिव भक्ति में शिव परिवार का भी महत्व है । शिव के नाम, रूप तथा गुण के समान ही उनके परिवार के सदस्य भी पूज्यनीय एवं श्रद्धेय हैं । शिव परिवार में पार्वती, गणेश, स्कन्द, नन्दा बैल आदि की पूजा होती है । भक्तों के लिए वे श्रद्धा के पात्र हैं ।

१– सौराष्ट्रे सोमनाथ च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्
उज्जयिन्यां महाकालोंकारे परमेश्वरम्
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने
सेतुबंध च रामेश्वरं घुमेशं तु शिवालये
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धफलं लभेत् ।

—शिव पुराण कोटि०–१।२-१-२४

पार्वती–

पार्वती शिव की इच्छा शक्ति हैं। पार्वती ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया रूप में शिव में विद्यमान अंहता शक्ति हैं। यह अंहता शक्ति ही स्पंदित होने पर पार्वती कहलाती है, उनमें ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि पर्व आने से वे पर्ववती हैं। यही क्रिया शक्ति है, जबतक यह इच्छा शक्ति रूप में हैं। तब तक सती कहलाती है और क्रिया शक्ति रूप में परिणत होने पर पार्वती बन जाती है। पार्वती के स्वरूप का पर्याप्त विकास प्राप्त होता है।

इनकी दुर्गा, आर्या, भगवती, देवसंकीर्ति आदि उपाधियाँ है। यह देवी देवताओं द्वारा स्तुत्य हैं। इन्हें परम शक्ति कहा गया है यह जगत की नियंत्री, सर्वशक्तियों की जननी, विश्वमाता और कल्याणी आदि कहकर इनकी आराधना की गई है। अतः यह ही 'शिव प्रिया' मान कर स्मरण की जाती हैं।[1]

स्कंद–

स्कंद शिव जी के ज्येष्ठ पुत्र है। इन्हें अग्निपुत्र के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इनके छह मुख है, अतः षडानन् भी कहलाते हैं। वे तारकासुर विजयी हैं। शक्ति शाली होने के कारण भक्तों ने स्तुत्य हैं कुमार नाम से विख्यात् हैं। शिव प्रिय शिवानुरक्त स्कंद नित्य प्रति शिव चरणों की बन्दना करते हैं।[2]

गणेश–

शिव के कनिष्ठ पुत्र गणेश जी हैं स्वभाव से चंचल तथा समस्त विघ्नों के हर्ता एवं मंगलकारी के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका मुख मत्त गजानन का सा है। गंगा व उमा दोनों ही इनकी माताएं मानी जाती हैं। आकाश इनका शरीर, दिशा भुजायें तथा चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि इनके तीनों नेत्र हैं। इनके

१– (क) डॉ० यदुवन्शी– शैवमत, पृष्ठ ५३ (ख) एकलचूरल हैरिटेज ऑफ इंडिया, पृष्ठ–१०

२ शिवपुराण वायवीय संहिता ३१ ७० ७१, ७२ ७३ ७४

मस्तक में शिव–ज्ञान मद की धारा अनवरत रूप से प्रवाहमान होती रहती है। भक्तों की दृष्टि में गणेश का अत्यन्त महत्व है बिना इनकी पूजा के कोई कार्य सम्भव नहीं। प्रत्येक शुभ कार्य करने से पूर्व गणेश जी का पूजन अनिवार्य है। अतः शिव परिवार में गणेश जी स्तुत्य एवं पूजनीय है। गणेश पूजन का पर्व महाराष्ट्र में धूम–धाम से मनाया जाता है। जिस प्रकार बंगाल में दुर्गा पूजा और इलाहाबाद में दशहरा की समाप्ति के साथ ही उसके अगले वर्ष की तैयारियों पर चर्चा हो जाती है ठीक उसी तरह महाराष्ट्र में पूरे साल लोग गणपति उत्सव मनाने की बेसब्री से इंतजार करते हैं।

प्रणव शक्ति–

प्रणवशक्ति के सूक्ष्म रूप हैं, गणेश प्रणवशक्ति ही 'ऊ' हैं और 'ऊ' प्रणवशक्ति का प्रतीक है रौद्ररूप अग्नितत्व के प्रतीक अर्थ में मौजूद है। 'ऊ' में हाथी की सूंड भी है, स्थूल भी अगर गणेश की मूर्ति को रेखांकित करें तो ऊं ही बनता है। अग्नि तत्व के लिए उपासना होती है। उसका काम है पकाना अथवा सड़े गले तत्वों को नष्ट करना है, विघ्न जीवन के दोष, सड़े-गले तत्व मात्र है, विघ्न विनाशक तत्व का विनाश करते हैं। इसमें गणेश का रौद्ररूप है। रिद्धिरूप तो समृद्धि में है।।प्रकृति ऋतु है प्रकृति के साहचर्य का एक रूप जब ऋतु के अनुकूल हो जाता है वह सिद्धि रूप बन जाता है।

गणेश की उपासना से जीवन के सारे सड़े- गले तत्व समाप्त हो जाते है और रक्त शक्ति स्वतः ही जागृत हो जाती है और सिद्धियां स्वतः आ जाती है।

गणेश चतुर्थी, वरद चतुर्थी के नाम से भी जानी जाती है। गणेश एकदन्त वाले हैं जिनमें कर्ण सूप के सामान है तथा वह नाग के जनेऊ धारण करते हैं। एक हाथ में पाशु और दूसरे हाथ में अंकुश धारण करने वाले हैं। वह विघ्न विनाशक हैं इसलिये हैं इसलिए उनकी पूजा और ध्यान करना चाहिए।

ग— भक्ति (उपासना)

भक्ति भगवान को प्राप्त करने का उत्कृष्ट साधन है। भक्ति की उत्कृष्टता सर्वत्र स्वीकार की गई है। उपासक एवं उपास्य की एक मात्र साधना उपासना है। परमेश्वर के स्वरुप से तदाकार कराने का सरल उपाय है। अभेदात्मक भाव से चिंतन, ध्यान और उसके सान्निध्य से प्राप्त आनन्द ही उपासना अथवा भक्ति है।

'भक्ति शब्द संस्कृत के भज् धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुआ है। इसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है- सेवा करना। अल्पज्ञ एवं असमर्थ मानव में इतनी क्षमता कहां कि वह अखिल ब्रह्माण्ड व्यापी परमात्मा की सेवा कर सके? इसी लिये महर्षि शाँडिल्य ईश्वर में परानुरक्ति अर्थात अपूर्व प्रकृष्ट अनुराग रखने को ही भक्ति कहते है।[1] भक्ति शिरोमणि नारद के मत में अपने समस्त कर्मो को भगवान को समर्पित करना है उनका थोड़ा सा भी विस्मृत होने पर परम व्याकुल होना ही भक्ति है।[2]

'आवृत्ति रसकृदुप देशात'[3] सूत्र की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य कहते हैं परमेश्वर की निरन्तर उत्कंठायुक्त स्मृत्ति ही भक्ति है।[4] 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'[5] सूत्र का भाष्य करते हुए रामानुजाचार्य भी परमात्मा की निरन्तर स्मृति को भक्ति मानते हैं।[6]

१– सापरानुरक्तिरीश्वरे–शाँडिल्य भक्ति सूत्र—२

२– नारद भक्ति सूत्र–१९

३ ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद १ सूत्र १ ४ वही ५ वही ६–वही

श्री मधुसूदन सरस्वती के मतानुसार भागवत धर्म सेवन से द्रवीभूत चित्त की सर्वेश्वर के प्रति जो विच्छिन्न वृत्ति है, वही भक्ति है।

अतः भक्ति अनन्त श्रद्धेय के चरणों में प्रसूत अगाध पवित्र और उज्ज्वल प्रेम की धारा है यह आस्था, श्रद्धा और विश्वास युक्त अनुरक्ति है जिसे ऐश्वर्य परा के नाम से भी अभिहित किया गया है। भक्ति ईश्वर भाव प्रधानता का नाम है। इसे 'आत्मैक परा'[1] भी कहा गया है। इस प्रकार मन को भगवान में पूर्ण रूप से केन्द्रित करके किसी फल की इच्छा लिए बिना उसका निरन्तर भजन करना ही भक्ति है।[2]

शुक्ल जी के शब्दों में कहा जा सकता है कि भक्ति धर्म साधना का भावात्मक अथवा रसात्मक विकास है।[3] यह धर्म साधना विभिन्न नामों सेवा, आराधना, पूजा, ध्यान उपासना आदि से अभिहित की जाती है। भक्ति भगवान् की एक मात्र प्रेमासक्ति है, जिसमें भक्त अपना सर्वस्व भगवान को अर्पित कर, निर्द्वन्द्व होकर केवल उनके ध्यान में लीन रहना चाहता है।

भगवान का साकार रूप ही सगुणोपासना का मूलाधार है। सगुण उपासना के दो साधन– बहिरंग और अंतरंग माने गए हैं। भगवान के नाम-रूप गुण का श्रवण, कीर्तन तथा भगवान का चरण सेवन सगुण भक्ति के बहिरंग साधन है। शैव एवं वैष्णव भक्ति के मूल तत्व सामान्यतः एक ही हैं। उपासना के विस्तार में कुछ भिन्नता दिखाई पड़ती है। शैवों के शिव आराध्य है। न कि सखा।

१– शांडिल्य सूत्र–३०

२– भक्तिरस्य भजनं, एतादिहा मुत्रोपाधिनैरास्येना– मुष्मिन् मनः कल्पनम्।– गोपाल पूर्व तापिनी उपनिषद–२–१

३– रामचन्द्र शुक्ल सूरदास, पृष्ठ ४५

शैवोपासना—

शैवोपासना में बाह्याचार का अपना विशिष्ट महत्व है। शिवोपासना में बेलपत्र, धतूरा, जल केशर, चंदन, मिठाई तथा कपूर के अतिरिक्त वे सामग्रिय। भी काम आती है जो अन्य मन्दिरों एवं समाधियों पर उपासना के काम आती है।

शिव पूजन में श्वेत एवं रक्त कमल, शंख पुष्प, द्रोण, पुष्प, कुश पुष्प, चमेली, शमी, बेला एवं जूही के पुष्प, तुलसी दल, शतपत्र, बिल्वपत्र, दूबा, लाल और सफेद आक, गेहूं जौं चावल, उड़द, श्रीफल आदि का प्रयोग होता।[1] शिव पूजन के उपकरणों में चम्पा और केतकी के पुष्पों का प्रयोग निषिद्ध माना जाता है।[2]

शिवपूजन में बिल्वपत्र का अत्यन्त महत्व है। बिल्वपत्र चढाने से शिव प्रसन्न होते हैं।[3]

कुछ शैव सम्प्रदायों में आराध्य को प्रसन्न करने के लिए बलि का भी विधान है। नेपाल में भैंसा, बकरा व गैंड़ा बलि के काम में लाया जाता है। देवी पट्टम में सुअर के बच्चे को बलि के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं। निरोबर में दशहरे की नवरात्रि में दो भैंसों की बलि दी जाती है। अमासभक्षी अपनी अंगुली का रक्त भैरव पर चढ़ाते हैं। तुलसीपुर के मेले में लोहे या बाँस के बने त्रिशूल जो लाल रंग से युक्त होते हैं, भैरव पर चढाये जाते हैं।[4]

१— गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास— सकाम शिव पूजन, पृ० २६

२— यत्कुसुमन्च विन्दते तच्चैव शिव वल्लभम्।
चंपक केतकं हित्वा अन्यत्सर्वं शिवे पर्यंत। —वही पृष्ठ १२

३— कल्याण: संक्षिप्त शिवपुराण अंक पृष्ठ ९७

४— ब्रिग्स- गोरखनाथ एण्ड दी कनफटा योगीस पृष्ठ-१४०

मनोकामना की पूर्ति हेतु शिवपूजन में प्रयुक्त विभिन्न उपकरणों का उल्लेख मिलता है। आयु की इच्छा वाले व्यक्ति को एक लाख दूर्वाओं से, पुत्र इच्छा वाले व्यक्ति को एक लाख धतूरे के पुष्पों से, मोक्ष की इच्छा वाले को लाल व सफेद आक व शत्रुओं एवं रोगों से मुक्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति को जपाकरवीर के पुष्पों से शिवपूजन करना चाहिए।[1] शिव जो जल, दुग्ध, सुवासित तेल, घृत, मधु, ईख का रस व गंगाजल से नहलाने पर समस्त सुखों की प्राप्ति होती है।[2] शिव लिंग पर जल एवं पुष्प प्रवाहित करने पर मनोकामना पूरी होती है क्योंकि भक्ति से शिव तुरन्त प्रसन्न होकर इच्छा की अविलम्ब पूर्ति करते हैं।

शैवोपासना की महत्व पूर्ण तिथियाँ–

शैवोपासना के दिन विशेष होते हैं। शैवोपासना का सबसे महत्वपूर्ण पूर्व माघ मास की शिवरात्रि, इसके अतिरिक्त आश्विन मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, होलिकोत्सव की प्रथम रात्रि, कृष्णाष्टमी, अनंगत्रयोदशी शिव उपासना के महत्वपूर्ण दिन है।

शिव के रौद्र रूप काल भैरव की पूजा कृष्णपक्ष की अष्टमी व नागपंचमी में की जाती है। इस दिन शैवोपासक अपने घरों की दीवारों पर नागों का चित्र बनाते है। सर्प की पूजा दूध आदि से करते हैं। सर्प की प्रतिमा को पूजकर जल में विसर्जित करके प्रतिभोज और उपहार बांटते है। दशहरे की नवरात्रि पर गोरखपुर में शैवों का विशेष उत्सव धूमधाम से सम्पन्न होता है।

१– गंगा विष्णु कृष्णदास– सकाम शिवपूजन, पृष्ठ ९,१०

२– शत्रुणं तापनार्थं वे तेलधारा शिवार्चने।
विसिते नेव तेलने भोग वृद्धि प्रजायते।
धारा पेक्षुरस स्थापि नाना सुखकारा स्मृता।
गंगाजल समुद्भता धारा मोक्ष फल प्रदा।

–शिवपुराण रुद्र संहिता अध्याय १५, पृ०२१

धाम का महत्व—

भक्ति के क्षेत्र में इष्टदेव से सम्बन्धित धामों का भी महत्व है। भक्त इन धामों को तीर्थ नाम से अभिहित करता है तथा वहां जाकर आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है। शिव से सम्बन्धित तीर्थ स्थान समस्त भारत में प्राप्त होते है। काशी, केदार, बद्रीनाथ, अमरेश, रामेश्वरम्, द्रोणपुर, उज्जैन, कांचीपुर, शिव कांची, अमरनाथ, पशुपतिनाथ, श्री रंगम, वैद्य नाथधाम श्री शैल, व श्री एकलिंग जी आदि शिवतीर्थ प्रसिद्ध हैं। इन तीर्थों पर समय समय पर शिवाराधना किए जाने पर भगवान शिव ने दर्शन दिये।

गोरखनाथी संप्रदायों में मठों का विशिष्ट महत्व है। इस सन्दर्भ मे गोरखपुर महत्वपूर्ण केन्द्र है जो गोरखनाथ के नाम पर बसा हुआ है। ये ये प्रधान मठ है, जिसमें गोरखनाथ की धूनी व पशुपति नाथ के मन्दिर है जिसमे चर्तुमुखी लिंग हैं।

देवी पट्टम, काशी, तुलसीपुर शैवमन्दिरों एवं मठों के लिए प्रसिद्ध है। देवीपट्टम के मन्दिर एवं मठ की मान्यता सर्वप्रचलित है। वाराणसी में गोरखा-थियों से सम्बन्धित तीन स्थान अत्याधिक महत्वपूर्ण है- भैरव की प्रसिद्ध ललाट, कालभैरव का मन्दिर तथा गोरखनाथ का टीला।

पंजाब, काबुल, स्यालकोट, जलालाबाद, भुज, विनोधर स्थान गोरखनाथी शैवो से सम्बन्धित महत्व पूर्ण है। इस प्रकार भक्ति में तीर्थ स्थानों का अप्रतिम स्थान है।

शैवोपासना में अंतरंग भक्ति का महत्व—

शैवों में अन्तरंग भक्ति का भी महत्व रहा है। भक्ति में भक्त भगवान के चरणों में आत्म निवेदन कर क्रमश: रागानुगो और पराभक्ति की प्राप्ति करता है। साधनावस्था में भक्त का विरक्ति भाव दृढ़ होता है। वह क्रमिक अभ्यास से आत्म समर्पण करने योग्य बनता है। शिव भक्तों में श्रवण कीर्तन, मनन, चरण सेवन और आत्मनिवेदन के अतिरिक्त उपासना की विशिष्ट पद्धति नमक-चमक तथा पार्थिव पूजा पद्धति मान्य है।

शैवों में प्रचलित नमक-चमक पूजा एवं पार्थिव पूजा का विवरण इस प्रकार है—

क— नमक—चमक पूजा—

रुद्राष्टाध्यायी में नमक—चमक पूजा का विस्तार से विवरण प्राप्त होता है। शिव पूजन में सर्वप्रथम गौरी गणेश पूजन के साथ साम्ब सदाशिव की पूजा की जाती है। पूजा विधान में शिव जी के सौन्दर्य एवं सौम्य रूप का वैदिक मंत्रों से ध्यान किया जात है। मन्त्रोच्चारण के साथ उन्हें आसन समर्पण किया जाता है। देव के पद प्रक्षालन के लिए मन्त्र बोला जाता है जिसमें उसे सर्वश्रेष्ठ और सब पदार्थों का निर्माता कहा गया है तत्पश्चात् हाथ धोने के लिये अर्घ्य का विधान है बतलाया गया है इसके बाद मन्त्र से आचमन का विधान है। इस मन्त्र में आदि पुरुष द्वारा विराट उत्पत्ति का होना एवं पृथ्वी की रचना के साथ सप्त धातु वाले देवताओं का वर्णन है। तदनन्तर पंचामृत स्नान का विधान है। पंचामृत में, दूध, दही, घृत, मधु और शर्करा का योग होता है। पाँच प्रकार की वृत्तियों का इन्द्रिय नलिकाओं से बहकर मन रूपी स्त्रोत द्वारा बतलाया गया है। पांच ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान वाणियों द्वारा प्रकट होना बतलाया गया है। वाणी नदी के समान वाणी का प्रवाहित होना मन द्वारा बताया गया है। पृथक्-पृथक मन्त्रों से विभिन्न पदार्थों का अपहरण करने का विधान है। पुनः दूध से स्नान कराया जाता है फिर शुद्ध जल से तदनन्तर दधि स्नान का समय आता है इसके बाद शुद्ध जल से स्नान करा कर घृत स्नान कराया जाता है; जल से स्नान के पश्चात मधु से स्नान कराने का विधान है यह विधि भी मंत्र से कराई जाती है। जिसमें शिवजी से प्रार्थना की गई है कि पृथ्वी मधुर रस से सम्पन्न हो, रात्रि व दिवस मधुरिमा मय हो, हमारा मंगल हो। सूर्य माधुर्य कर दें तथा गायें मधुर दुग्ध प्रदान करें। मधु के पश्चात शर्करा स्नान कराया जाता है उसके बाद शुद्ध जल में स्नान का विधान है। शुद्ध जल मन्त्र से अर्पित किया जाता है। गंध मिश्रित जल से स्नान समर्पण कराया जाता है, फिर उददर्तन का स्नान कराया जाता है. वस्त्र समर्पित किया जाता है वस्त्र समर्पण के पश्चात् यज्ञोपवीत पहनाया जाता है। चदन का लेप किया जाता है। अक्षत और पुष्प हार दिया जाता है उसके बाद तीनपत्रों वाला विल्व पत्र शिव को चढ़ाया जाता है। सौभाग्य द्रव्य चढ़ाकर धूप दिखलाया जाता है। प्रज्ज्वलित दीप दिखाया जाता है। मंत्र द्वारा उस

रुरुप की वन्दना की जाती है। जिसने मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य श्रोत से वायु व प्राण तथा मुख से अग्नि प्रकट हुई है। इसके बाद हाथ धोकर घृत पूरित नैवेध मंत्र के साथ, समर्पण किया जाता है। प्राणाय स्वाहा, आपनाय स्वाहा, ऊ उदानाय स्वाहा ऊं समनाय स्वाहा आदि मंत्रों के साथ नैवेद अर्पण कर बीच-बीच में उत्तरा पोषण एवं हस्त प्रक्षालन के लिए जल देकर, आचमन कराकर, हाथ की शुद्धि के लिए फल सहित ताम्बूल अर्पण किए जाते है। फल समर्पण के मंत्र में कहा जाता है कि सभी औषधियाँ हमें रोग मुक्त करें। अन् फल के बाद हिरण्य दक्षिणा का समय आता है इस प्रकार आरती और प्रदक्षिणा की जाती है प्रदक्षिणा के बाद मंत्र पुष्पांजलि समर्पित कर मन्त्र से नमस्कार का विधान है। उपासक वृत-कर्म का फलांश सदाशिव को अर्पण कर शिव नीरा जन का प्रेम विभोर होकर ज्ञान करता है। अन्त में महादेव के लिंग पर छिद्र वाला कलश लटकाकर कामनानुसार जल, दुग्ध, शर्करा आदि का प्रक्षेप कर रुद्र, लघुरुद्र, महारुद्र, अतिरुद्र के लिए अभिषेक कर्म सँपादित किया जाता है। यही नमक-चमक विधान शैवों में अत्यधिक प्रचलित साधना है

[ख] पार्थिव पूजा विधान:—शैवोपासक सर्व प्रथम नित्यकर्म को पूर्ण कर शिव का स्मरण करते हुए भस्म धारण करता है, फिर 'ऊं नमः शिवाय' मन्त्र का उच्चारण करते हुए समस्त पूजन सामग्री की प्रेक्षण करता है। भूरसि मंत्र द्वारा वह क्षेत्र सिद्ध करता है। नमः शिवाय मन्त्र से क्षेत्र शुद्धि और पंचामृत का प्रेक्षण किया जाता है। उपासक तत्पश्चात् 'नमः' पूर्वक नीलग्रीवाय मन्त्र से शुद्धि की हुई मिट्टी को जल से सिंचित कर लिंग की प्रतिष्ठा करता है। वह 'एतते रुद्रावस' मन्त्र से आसन देता है तथा 'यानिपु' मंत्र से शिव के अंग में न्यास करता है तदनन्तर 'असो यस्ताम्रो' मन्त्र शिव लिंग में इष्ट देवता शिव का न्यास किया जाता है। इस पद्धति में नमोऽस्तु नीलग्रीवाये मन्त्र से

पाद्य समर्पण एवं 'रुद्रगायत्री मन्त्र से अर्घ्य दिया जाता है। 'त्र्यम्बक मन्त्र' से आचमन एवं 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय' मन्त्र से शिवलिंग को पंचामृत से स्नान कराया जाता है, फिर' मा नस्तो के से कटिबद्ध' 'यामे हृति' मन्त्र से वस्त्र एवं यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है। 'मक्त नमः अम्य: मन्त्र से मूर्ति पर सुगंधित चन्दन, रोली आदि का अनुलेपन करता है। इसी प्रकार 'नमस्तिक्षन्दे मन्त्र से अक्षत नमः पर्याय 'मन्त्र से पुष्प तथा 'नमः पर्याय' से बिल्व पत्र समर्पित करता है वहे नमः आशवे मन्त्र से दीप निवेदन करता है। इस विधि में नमो ज्येष्ठाय मन्त्र से नैवेद्य एवं इमा रुद्राय' से फल का समर्पण किया जाता है और नमे आशवे मंत्र से इष्टदेव शिव का नीराजन किया जाता है, तत्पश्चात प्रतिमा की परिक्रमा कर साष्टांग प्रणाम किया जाता है।

पंचाक्षर मन्त्र का महत्व:—

शैवों की अंतरंग साधना में पंचाक्षर मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' के जाप का महत्व हे। शैवों के अनुसार बाह्य पूजा आभ्यान्तरिक या मानसी पूजा के लिए सोपान का कार्य करता है। आन्तरिक पूजा में मन्त्र का जाप का अत्यधिक महत्व है। इससे मनः शुद्धि होती है।

मंत्रों में पंचाक्षर मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' प्रमुख है। इसे मन्त्रराज की संज्ञा से अभिहित किया गया है। यह वेद का सार तत्व है, मोक्ष प्रदायी है। यह मंत्र नाना प्रकार की सिद्धियों से युक्त, मन को प्रफुल्लित करने वाला तथा सुनिश्चित अर्थवाला परमेश्वर का गम्भीर वचन माना गया है। प्रणव के संयुक्त होने पर यह षडक्षर हो जाता है। इस मंत्र के जाप करने से भक्त परम धाम का अधिकारी होता है। प्रलयकाल में सदाशिव और उनका पंचाक्षर मंत्र शेष रह जाता है।

•

शैव तांत्रिकों की भक्ति पद्धति:-

शैव तांत्रिकों की भक्ति पद्धति में भी आभ्यान्तरिक उपासना का महत्वपूर्ण स्थान है। शैवतांत्रिकों के मतानुसार द्वैतभाव रहित, अपनी स्वरूप महिमा में साधक स्थिति ही यथार्थ पूजा है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए तीन सोपान निर्धारित हैं।

१— अपरा:- वाह्य चक्र, आवरण आदि पर अवलम्बित साधना अपरा साधना है। अपरा साधना आन्तिरिक शक्तियों को जाग्रत करती है। इसमें साधक कुंडलिनी को जाग्रत कर षट चक्रों का भेदन करता है।

२-मध्यमा:—इसमें कर्म ज्ञान का रूप धारण कर लेता है तथा साधक की परमात्मा के साथ अद्वैत भाव की प्राप्ति होती है।

परावस्था:-साधक को परमात्मा के साथ अद्वैत भावकी प्राप्ति परावस्था कहलातीहै।

शैवतांत्रिक आत्मा के सभी कर्म शिव अर्चना के हेतु माने गये हैं। ये कर्म शिव रूपी आत्मा की तृप्ति के लिए है। शंकराचार्य भी आत्मा के सभी कर्म शिव की आराधना के लिए मानते हैं। इस उपासना के मुख्य उद्देश्य जीवत्व को नष्ट कर शिवतत्व को प्राप्त करना है। यही सिद्धि एवं मोक्ष प्रदायिनी है। सभी तन्त्रों में मानसिक साधना को विशिष्ट स्थान प्रदान किया है

कनफटे योगी, कापालिक, कालमुख एवं पाशुपत औघड़ आदि शैवयोगी तांत्रिक पूजा के आधार पर, नर का पूर्ण अभिव्यक्ति में नारीकी उपासना करते हैं

इनकी साधना प्रकृति और पुरुष का सम्मिलन है जो शरीर में पुरुष सिद्धान्त को मातृभाव से मिलाती है तथा सगुण को निर्गुण बनाने का प्रयास करती है।

इस प्रकार देखते हैं कि भक्त (उपासक) अपने आराध्य (उपास्य) में तल्लीन होकर परमानन्द की अनुभूति के लिए सदैव सचेष्ट रहता है। वह अपने आराध्य उपास्य को प्रसन्न करने के लिए उन्हीं की वेषभूषा धारण करते हुए आचार-विचार से अपनी निष्ठा बनाता है। यही निष्ठा उसके व्यक्तित्व का आधार हुआ करती है। यह कायिक शुद्धता एव नैतिक आचरण के पुष्ट होने पर मानसिक भूमिका पर ज्ञानोदय से आत्मोन्नति करता हुआ आत्मा एव विश्वात्मता की अभेदानभूति का आभास करता है। अन्त में यही आभास अद्वैत में परिणत हो जाता है। साधक अपने आराध्य में तल्लीन होकर अखड आनन्द प्राप्त करता है।

शिव भक्ति के प्रसंग में पंचाक्षर मंत्र का विशेष महत्व है। यह सिद्धि एव मोक्ष प्रदायक है।
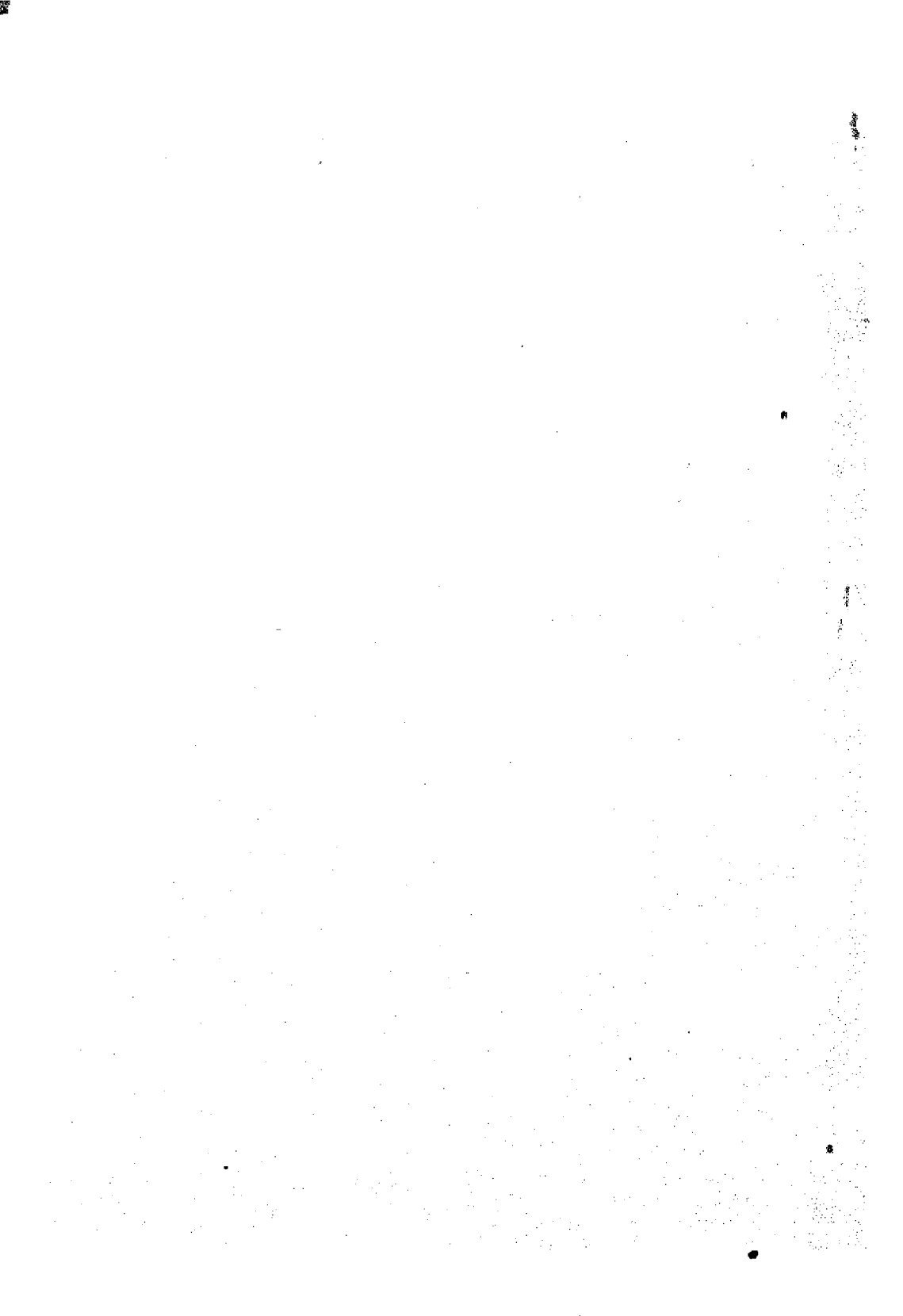
अमोघशिवकवचम्

(यह अमोघ शिवकवच परम गुप्त, अत्यन्त आदरणीय, सब पापों को दूर करने वाला, सारे अमंगलों को, विघ्न बाधाओं को हरनेवाला, परम पवित्र जयप्रद और सम्पूर्ण विपत्तियों का नाशक माना गया है। यह परम हितकारी है और सब भयों को दूर करता है। इसके प्रभाव से क्षीणायु, मृत्यु के समीप पहुंचा हुआ महान् रोगी मनुष्य भी शीघ्र नीरोगता को प्राप्त करता है और उसकी दीर्घायु हो जाती है। अर्थाभाव से पीड़ित मनुष्य की सारी दरिद्रता दूर हो जाती है और उसको सुख वैभव की प्राप्ति होती है। पापी महापाप से छूट जाता है और इसका भक्ति-श्रद्धा पूर्वक धारण करने वाला निष्काम पुरुष देहान्त के बाद दुर्लभ मोक्षपद को प्राप्त होता है।

अथ ध्यानम्

वज्रदंष्ट्रं त्रिनयनं कालकण्ठमरिंदमम् ।
सहस्रकरमप्युग्रं वन्दे शम्भुमुमापतिम् ॥

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्वात्मकाय सकलतत्व विहाराय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैकहर्त्रे सकललोकैकगुरवे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमगुह्याय सकलवरप्रदाय सकलदुरितार्त्तिभञ्जनाय सकलजगदभयंकराय सकललोकैक शंकराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजाभासाय निर्गुणाय निरुपमाय निरुपाय निराभासाय निरामयाय निष्प्रपञ्चाय निष्कलङ्काय निर्द्वन्द्वाय निस्सङ्गाय निर्मलाय निर्गमाय नित्यरूपविभवाय निरुपमविभवाय निराधाराय नित्यशुद्धबुद्धपरिपूर्ण सच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तप्रकाशते जोरूपाय जय जय महारुद्र महारौद्र भद्रावतार दुःखदावदारण महाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वाङ्गखड्ग चर्मपाशाङ्कुशडमरु शूलचापबाण गदाशक्ति भिन्दपाल तोमर मुसल मुद्गर पट्टिश परशु परिघ भुशुण्डी शतघ्नीचक्राद्यायुध भीषण कर सहस्रमुख दंष्ट्राकराल विकटाट्टहास विस्फारित ब्रह्माण्डमण्डल नागेन्द्र कुण्डल नागेन्द्रहार नागेन्द्रवलय नागेन्द्र चर्मधर मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विरुपाक्ष विश्वेश्वर विश्वरूप वृषभवाहन विषभूषण विश्वतोमुख सर्वतो रक्ष रक्ष मां ज्वल ज्वल महामृत्यु भयमप मृत्युभयं नाशय नाशय रोगभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्पभयं शमय शमय चोरभयं मारय मारय मम शत्रू नुच्चाट योच्चाटय शूलेन विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय बाणैः संताडय संताडय रक्षांसि भीषय भीषय भूतानि विद्रावय विद्रावय कूष्माण्ड वेतालमारीगण ब्रह्मराक्षसान् संत्रासय संत्रासय ममाभय कुरु कुरु वित्रस्तं मामाश्वासयाश्वासय नरकभयान्मा मुद्धारयोद्धारय संजीवय संजीवय क्षुत्तृड्भ्यां मामाप्याययाप्यायय दुःखातुरं मामानन्दयानन्दय शिवकवचेन मामाच्छादयाच्छादयत्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते नमस्ते।